लहू का रंग एक है

किशोरोपयोगी एकांकी नाटक

राजकुमार अनिल

मेरी बात

हिन्दी में मौलिक नाटकों का घोर अभाव है और खासकर किशोर नाटकों का। इस दिशा में किशोरों के लिए तो कुछ किया ही नहीं गया है और जो किया भी गया है, वह नहीं के बराबर होने के साथ त्रुटिपूर्ण भी है। विगत बीस वर्षों से मंच पर सक्रिय रहने के साथ ही एक शिक्षक के रूप में मैं किशोर-किशोरियों के निकट भी रहा। उनकी इस दिशा में रुचि और उत्सुकता का मैंने पर्याप्त अध्ययन किया।

प्रस्तुत नाटक पूर्णतः मंचीय हैं। सीमित साधनों और बिना किसी स्त्री-पात्र के ये लघुनाटक आसानी से मंचित किए जा सकते हैं। नाटक की कहानी में प्रवाह और कथोपकथन की सरलता का मैंने पूरा ध्यान रखा है, साथ ही शिक्षा तथा राष्ट्रीय विचारधारा का समावेश करने की चेष्टा की है।

आशा ही नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे ये लघुनाटक किशोर वर्ग के छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

राजकुमार अनिल

६६४/२२२, सोना सदन,
कैलाशनगर ८ वीं सड़क,
दिल्ली-३१

समर्पण

स्व० पूज्य दादा को जिनकी
प्रेरणा ने मेरी नाट्य-
सृजन कला को
नया क्षितिज
प्रदान
किया

विषय-सूची

तमाशे की कीमत

पात्र

⊙

स्कूल के छात्र	सुनील विनोद सुरेन्द्र प्राण दिलीप विजय
अध्यापक	शर्माजी
चपरासी	चपरासी

स्थान

⊙

एक उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय का प्रांगण

काल

⊙

फरवरी, १९७२

[परदा खुलता है। मंच पर विनोद और सुनील दिखाई देते हैं। दोनों मैट्रिक के छात्र हैं—अवस्था १६-१७ के लगभग। विनोद पेंट व शर्ट पहने है, जबकि सुनील पेंट व बुशर्ट। सुनील के हाथ में एक-दो पुस्तकें और कुछ कापियां हैं, जबकि विनोद के हाथ में पुस्तक व कापियों के अलावा—तह की हुई एक चादर भी है।]

विनोद : चल, अब तू लेट जा।

सुनील : ले, मेरी पुस्तकें संभाल। (अपनी पुस्तक व कापियां विनोद को देता है।) ला, अब चादर दे मुझे।

[विनोद चादर दे देता है।]

विनोद : जैसा बताया था सब अच्छी तरह याद है न ?

सुनील : बिल्कुल अच्छी तरह याद है। (रुककर) मैं लेट रहा हूं। ध्यान रखना, कहीं वह उल्लू इधर न निकल आए !

विनोद : कौन ?

सुनील : अरे, वही चार आंख वाला शर्मा मास्टर ! देख लेगा, तो कहेगा (मुंह बनाकर) बेटा, ऐसा नहीं किया करते, तुम अच्छे बच्चे हो न ! तुम्हारे मां-बाप क्या इसीलिए तुम्हें स्कूल भेजते हैं !

विनोद : चल जल्दी कर, टाइम निकलता जा रहा है।

[सुनील चादर ओढ़कर फर्श पर लेट जाता है।]

सुनील : (चादर के अन्दर से) तमाशा ज़रा जल्दी निपटाना

दोस्त, नहीं तो इस मोटी चादर के नीचे मेरा दम घुट जाएगा। अरे यार, चादर का छेद किधर है ?

[विनोद चादर पर झुककर इधर-उधर देखता है।]

विनोद : ओहो ! दीखता है, उस दर्जी के बच्चे ने छेद बनाया ही नही !

सुनील : बनाएगा कैसे ! तूने उधार की बात की होगी। उधार का काम भला कौन ढंग से करता है।

विनोद : खैर, काम निकल जाने दे, फिर उसे दिखाता हूं।

सुनील : अब उसे तो बाद मे दिखाना, पहले जल्दी तमाशा शुरू कर !

विनोद : चादर मे छेद तो है नहीं ! अब तरीका नंबर दो से होगा तमाशा। याद है न !

सुनील : हां-हां, याद है !

विनोद : (जेब से एक छोटा-सा डमरू निकाल कर बजाता है और मदारियों की तरह चिल्लाता है।) आओ दोस्तो, *तमाशा देखो। बंगाले का जादू ! ऐसा अचंभा कभी* न देखा होगा। जल्दी आओ ! जल्दी आओ, अब तमाशा शुरू हो रहा है, बंगाले का जादू !

[स्कूल के पांच-छह छात्र—सुरेन्द्र, केदार, दिलीप, प्राण, विजय आदि आकर विनोद के इर्द-गिर्द खड़े हो जाते हैं।]

विनोद : देखो दोस्तो, बगाले का जादू ! अचभे का अचभा ! हंगामे का हंगामा, तमाशे का तमाशा और······

सुरेन्द्र : अरे, गला ही फाड़ता रहेगा या खेल भी शुरू करेगा !

विनोद : बस, अब शुरू हो गया समझो। आप यह जो बच्चा लेटा हुआ देख रहे हैं न, हिमालय की गुफा में जाकर *इसने एक बाबाजी की सेवा की तब इसे यह सिद्ध*

मिली ! मेहरबान, कदरदान जरा एक बार दोनों हाथों से जोर की ताली बजाना और एक-एक कदम पीछे हट जाना ।

[सब पीछे खिसकते हैं। सुनील चादर के नीचे से हाथ निकालकर विनोद के पैर में चिकोटी काटता है।]

विनोद : अरे बाप रे ! आप लोगों ने ताली तो बजाई ही नहीं ! देखिए मेहरबान ! लड़का नाजुक है, कभी चादर के नीचे सोया नहीं, सौ जूते खाकर भी रोया नहीं......

[सब हंसते हुए ताली बजाते हैं।]

प्राण : बोल तो हम रुला दें !

विनोद : खामोश ! खामोश ! तमाशा शुरू होता है। लड़के इधर आओ !

सुनील : आ गिया !

विनोद : सबको पहचान जाओ !

सुनील : पहचान लिया।

विनोद : (सुरेन्द्र के कन्धे पर हाथ रखकर) बताओ इस साहब का नाम क्या है ?

सुनील : सुरेन्द्र ।

विनोद : (केदार की बांह पर हाथ रखकर) और यह कौन है ?

सुनील : केदार ।

विनोद : (प्राण के सिर पर हाथ रखकर) और इस पहलवान का नाम क्या है ?

सुनील : प्राण ।

दिलीप : अबे नाम ही नाम पूछता जाएगा या कोई और खेल भी दिखाएगा ?

विनोद : धीरज रखिए, धीरज ! मेहरबान, अभी दिखाता

हूं। आप लोग फिर सामने आ गए! देखिए, हवा नहीं मिलेगी तो घुटन से लड़का घबरा जाएगा। जरा लड़के पर रहम खाइए, लड़का आपका ही है···

विजय : हमारा है या अपने बाप का है। (सब हंसते हैं।)

विनोद : हां तो जनावेवाली, एक बार जमकर वजाइए दोनों हाथों से ताली!

सुरेन्द्र : खेल दिखाने का तो नाम नहीं है, कब से हाथ पांव की कसरत करवाता जा रहा है। कभी पीछे खिसको, कभी आगे आओ! तो कभी ताली बजाओ!

प्राण : कोई मत बजाना ताली।

विनोद : भले मत बजाओ, पर खेल तो मैं दिखाऊंगा ही। हां, आप में से किसी भाईसाहब के पास एक रुपए का नोट है?

केदार : एक रुपया जेब में होता तो क्या हम यहां खड़े-खड़े तेरा यह सड़ियल खेल देखते! जाकर किसी होटल में नाश्ता न करते।

[इसी समय अध्यापक शर्माजी लड़कों के पीछे चुपचाप आकर खड़े हो जाते हैं। सब अपनी धुन में इतने मग्न हैं कि किसी को उनके आने का पता ही नहीं लगता।]

विनोद : हां, तो रुपए का नोट किसी के पास भी नहीं है कदरदान···

विजय : अबे, होगा भी तो तुझे कौन देगा। एक बार लेने के बाद क्या तू नोट कभी वापस करने वाला है!

सुनील : (चादर के नीचे से) नोट वापस हो जाएगा, जमानत मैं लेता हूं!

दिलीप : वाह वा, जमानत भी कौन ले रहा है। चोर का भाई गिरहकट!

[सब हंसते हैं। इसी समय शर्माजी जेब से एक रुपए का नोट निकालकर विनोद की ओर बढ़ाते हैं।]

विनोद : इसे कहते हैं, कदरदान! ये मेहरबान जानते हैं कि तमाशे की कीमत क्या है, इज्जत क्या है! लाइए माईसाहब...

[विनोद नोट लेने को हाथ बढ़ाता है। शर्माजी के चेहरे पर नजर पड़ते ही उसका हाथ रुक जाता है। इस बीच सभी छात्रों की नजर उन पर पड़ जाती है और सब चुपचाप वहां से खिसक जाते हैं। 'हें...हें' करता हुआ विनोद भी पीछे खिसक जाता है और अपनी पुस्तक कापियां उठाकर भाग जाता है। शर्माजी सुनील के करीब आते हैं।]

सुनील : अबे, जल्दी कर न! मैं यहां पसीने से तर-बतर हो रहा हूं!

[शर्माजी चुपचाप खड़े-खड़े मुस्कराते हैं। सुनील चादर से हाथ बाहर निकालकर उनके पैरों में चिकोटी काटता है। हड़बड़ाकर शर्माजी पीछे हट जाते हैं।]

सुनील : क्यों बे, गले में क्या अटक गया? कोई जवाब भी नहीं दे रहा है? मैं कहता हूं, बहुत पीटूंगा।

[कोई जवाब न पाकर सुनील मुंह पर से चादर हटा देता है, पर सिरहाने की ओर खड़े शर्माजी को नहीं देख पाता।]

सुनील : (होंठ भींचकर) ऐं, सब भाग गए। ठीक है, देख लूंगा एक-एक को।

[चादर हटाकर उठ खड़ा होता है। तभी नजर शर्माजी पर पड़ती है। चेहरे का रंग उड़ जाता है।]

सुनील : अ...अ...आप!

शर्माजी : (मुस्कराकर) सोचा, जब इतने करीब बिना टिकट

के तमाशा दिखाया जा रहा है तो मैं भी क्यों न देख लूं ।

सुनील : हें हें, बात यह है सर…

शर्माजी : मैंने तुमसे कोई बात तो नहीं पूछी ।

सुनील : यस सर…जी हां… लेकिन…लेकिन…

शर्माजी : तुमने और विनोद ने मिलकर यह तमाशा कितने दिनों में सीखा ?
(सुनील सिर झुका लेता है ।) बोलो, जवाब दो !

सुनील : जी, दो दिनों में ।

शर्माजी : छमाही परीक्षा में तुम्हें सब पेपरों में कितने नम्बर मिले थे ! यह तो याद ही होगा !
[सुनील चुप ही रहता है ।]

शर्माजी : अगर ये दो दिन तुम पढ़ाई में लगाते तो हर विषय में फेल होकर कक्षा में तुम्हें जलील न होना पड़ता ।
[शर्माजी तेजी से एक ओर चले जाते हैं । सुनील क्षण भर उन्हें जाते देखता रहता है, फिर उसकी मुट्ठियां बंध जाती हैं ।]

विनोद : (प्रवेश करके) चला गया ?

सुनील : हां, चला गया । (उसका कालर पकड़कर) पर तू मुझे बिना कुछ बताए अकेला छोड़कर क्यों भाग गया था ?

विनोद : अरे, कालर तो छोड़ यार ! शर्ट की क्रीज खराब हो जाएगी ।

सुनील : (छोड़कर) ले छोड़ दिया । अब बता !

विनोद : मैंने तो उसे देखा ही नहीं । जाने कब लड़कों के पीछे आकर खड़ा हो गया था । और जब देखा तो वह एकदम सामने था । उस समय तुझसे भला क्या

कहता, और कैसे कहता, तू ही बता !

सुनील : हूं ! अब यह चश्मेवाला उल्लू गड़बड़ तो जरूर करेगा।

विनोद : और तेरे साथ मैं भी मारा जाऊंगा। कहते हैं न, गेहूं के साथ घुन भी पिस जाता है।

सुनील : तमाशे का ढोंग रचा तो था लड़कों की जेब से पैसे निकालने के लिए पर गले पड़ गई यह मुसीबत !

विनोद : अब क्या होगा ?

सुनील : लेने के देने पड़ गए ! स्कूल में हुल्लड़ मचाने के एवज में कुछ फाइन···

विनोद : पर फाइन के लिए पैसे कहां से लाऊंगा यार ! मेरे पिताजी तो बहुत गरीब हैं। बड़ी मुश्किल से तो वे मेरी फीस दे पाते हैं—मिल में मजदूर हैं।

सुनील : तो मेरे पिताजी कौन धन्ना सेठ हैं ! अबे गधे, जब मूसलों से डरना था तो ओखली में सर दिया ही क्यों ? अब तो जो होगा भुगतना ही पड़ेगा।

विनोद : वह देखो, चपरासी हमारी ही ओर आ रहा है। जाने क्या फरमान ला रहा है !

सुनील : इसके अलावा और क्या होगा कि हमें प्रिंसिपल साहब याद फरमा रहे होंगे।
[चपरासी का प्रवेश।]

चपरासी : सुनील, तुम्हें प्रिंसिपल साहब ने इसी वक्त बुलाया है।

सुनील : (विनोद से हंसकर) मैंने क्या कहा था, देख लिया न ? मुझे ही बुलाया है या इसे भी ?

चपरासी : नहीं, सिर्फ तुम्हें बुलाया है।

विनोद : (लंबी सांस लेकर) चलो भैया ! जान बची और

लाखों पाए।

सुनील : पर तुम बचोगे कहां! मैं फंसूंगा तो क्या तुम्हें छोड़ दूंगा! (चपरासी से) चलो!

[चपरासी के पीछे-पीछे सुनील चला जाता है।]

विनोद : स्कूल में दबदबा कायम करने के लिए मैंने इससे दोस्ती गांठी जरूर थी लेकिन देखता हूं, यह दोस्ती काफी महंगी पड़ रही है!

[इसी समय शर्माजी फिर प्रवेश करते हैं।]

शर्माजी : अरे विनोद, तुम! यहां अभी सुनील खड़ा था, कहां गया?

विनोद : प्रिंसिपल साहब से मिलने।

शर्माजी : क्यों?

विनोद : उन्होंने बुलवाया था।

शर्माजी : किसलिए?

विनोद : मुझे मालूम नहीं, सर!

शर्माजी : मैं जाकर देखता हूं।

[शर्माजी चले जाते हैं। सुरेन्द्र और विजय प्रवेश करते हैं।]

सुरेन्द्र : करवा दी न बेचारे की उलटे उस्तरे से हजामत!

विनोद : मैं भला उसकी क्या हजामत कराऊंगा! मुझे तो खुद अपनी जान के लाले पड़े हैं।

विजय : सुनील के साथ जो भी रहा है, उसका यही हाल हुआ है। साल भर तक ऐसी ही हरकतें करता रहता है और आखिरी समय मास्टरों को डरा-धमकाकर खुद तो पास हो जाता है, पर जो उसके साथ रहता है, उस बेचारे को रोना पड़ता है।

विनोद : मैं तो इतने ही में भर पाया, भैया! (कान छूकर)

अब तो उससे सात हाथ दूर रहूंगा !

सुरेन्द्र : लो, वह आ तो रहा है !

[सुनील प्रवेश करता है।]

सुनील : देख लूंगा उस शर्मा के बच्चे को ! यह सब उसी की कारस्तानी है। उसी ने प्रिंसिपल से रिपोर्ट की है।

विजय : क्या कहा प्रिंसिपल ने ?

सुनील : कहेगा क्या ! वही पुरानी बात—आइंदा ऐसी हरकत की तो स्कूल से निकाल दूंगा। ऐसे बहुतेरे देख लिए स्कूल से निकालने वाले ! और इस शर्मा की तो कल ही टांगें तोड़े देता हूं। वह भी क्या याद रखेगा कि किसी से पाला पड़ा था।

सुरेन्द्र : पर शर्माजी की टांगें तोड़ने के बाद तुम्हारा क्या होगा !

सुनील : क्यों ? मेरा क्या होगा ? इस तरीके से उसकी टांगें तोड़ूंगा कि कोई मुझे पकड़ ही नहीं पाएगा। पकड़ने की बात तो दूर, कोई मुझ पर शक तक नहीं कर सकेगा।

विजय : हम भी तो सुनें, ऐसा कौन-सा तरीका है ?

सुनील : वाह, तुम्हें बता दूं और अभी से तुम लोग स्कूल में उसका प्रचार करते फिरो ! हां, यह तो बताओ, शर्माजी स्कूल आते कब हैं ?

सुरेन्द्र : साढ़े दस बजे।

सुनील : तब तो कल मुझे दस बजे ही स्कूल आना पड़ेगा।

विनोद : तुम और दस बजे स्कूल आओगे !

सुनील : इसमें अचरज की क्या बात है ?

विनोद : क्योंकि आज तक तो तुम कभी टाइम पर स्कूल आए नहीं।

सुनील : क्या करूं, नौ वजे के पहले नींद ही नहीं खुलती ! पर कल तो किसी भी हालत में मैं जल्दी आऊंगा··· आना ही पड़ेगा···

सुरेन्द्र : (हंसकर) यानी कल तमाशे का दूसरा हिस्सा दिखाया जाएगा ?

सुनील : हां, बल्कि असली तमाशा कल ही होगा ! लेकिन तुममें से अगर किसी ने यह बात किसी को वताई तो याद रखना कि फिर मैं उसे भी अपने तमाशे में शामिल कर लूंगा !

विजय : हमें क्या गरज पड़ी है औरों को वताने की···
[प्रकाश क्षण भर के लिए गुल हो जाता है। जब दुबारा प्रकाश होता है तो मंच पर विनोद, सुरेन्द्र, विजय और दिलीप खड़े नजर आते हैं।]

सुरेन्द्र : (घड़ी देखकर) साढ़े दस तो वज गए हैं और अपने हीरो द ग्रेट सुनील का कहीं पता ही नहीं है।

दिलीप : वह क्या आएगा। उसे सोने से फुरसत मिले तब न !

विजय : देखें, आज कौन-सा नया गुल खिलाता है !
[तभी भागकर सुनील आता है।]

सुनील : हो गया।

विनोद : क्या हो गया ?

सुनील : पूरा इंतजाम करके आ रहा हूं। अब आने दो शर्मा के बच्चे को—धररर धड़ाम् और चारों खाने चित !

सुरेन्द्र : अच्छा, ऐसा कौन-सा उपाय करके आ रहा है तू ?

सुनील : मुझसे क्या पूछता है, जाकर देख ले !
[भागते हुए प्राण और केदार का प्रवेश।]

प्राण : स्कूल के गेट के पास केले के छिलके क्या तुमने फैलाए थे ?

सुनील : अबे, जरा धीरे बोल ! हां, क्या हुआ ?

केदार : बहुत बुरा हुआ !

सुनील : शर्मा फिसलकर गिरा क्या ? टांग-वांग टूटी ?

प्राण : फिसलकर गिरा तो जरूर, पर शर्मा नहीं बल्कि कोई बेचारा बुजुर्ग है एक ! शायद किसी काम से स्कूल ही आ रहा था ।

केदार : ओह, बड़ा दर्दनाक दृश्य था । फिसलकर वह सड़क पर जा गिरा और पीछे से तेज रफ्तार से आता हुआ एक आटोरिक्शा उसके पांव कुचलता हुआ निकल गया । तड़पकर बेचारा बेहोश हो गया ।

प्राण : च्च्च, बेचारे के पैर की हड्डी चूर हो गई होगी !

केदार : आसपास के लोग उसे लाद-फांदकर अस्पताल ले गए ।

सुरेन्द्र : सचमुच, यह अच्छा नहीं हुआ । बेचारा गरीब नाहक...

सुनील : क्या बेचारा-बेचारा लगा रखा है ! उस आदमी के आंख नहीं थी ? अंधा था क्या ? केले के छिलके पड़े हैं, वह देख नहीं सकता था...

विजय : एक तो तुमने वैसी खतरनाक जगह पर केले के छिलके बिखरा दिए, उलटे...

सुनील : (डांटकर) ज्यादा बात करने की जरूरत नहीं ! कोई मरता है तो मरे, अपनी बला से । तुझे उससे ज्यादा हमदर्दी है तो जा, तू भी अस्पताल में जाकर उसकी सेवा कर ।

विनोद : शर्मा मास्टर इसी ओर आ रहा है । मैं भी फूटता

हूं, क्या भरोसा तुम्हारे साथ देखकर मेरा भी मुर्गा बना दे !

[शर्माजी को आता देख एक-एक करके सब वहां से खिसक जाते हैं।]

[दूसरी ओर से शर्माजी प्रवेश करते हैं।]

शर्माजी : अरे सुनील, आज तो तुम समय से पहले स्कूल आ गए?

सुनील : यस सर, एक काम था इसलिए…

शर्माजी : तो ! काम हो गया ?

सुनील : जी ? यस सर. हो गया…

शर्माजी : क्या तुमने बोर्ड-परीक्षा की फीस दे दी है ?

सुनील : नो सर, पिताजी से मैंने कहा था, पर वे कह रहे थे कि कहीं से भी जुगाड़ नहीं हो रहा है।

शर्माजी : जानते हो, आज फीस जमा कराने की आखिरी तारीख है ?

सुनील : यस सर ! पिताजी को भी बता दिया था। उन्होंने कहा था कि वे स्कूल आकर खुद प्रिंसिपल से बात कर लेंगे।

शर्माजी : क्या करते हैं तुम्हारे पिताजी ?

सुनील : छापेखाने में मशीनमैन हैं।

शर्माजी : हूं ! (कुछ रुककर) तुम्हारे पिताजी प्रिंसिपल से मिलने आए तो जरूर थे, पर मिल नहीं सके।

सुनील : क्या प्रिंसिपल ने इन्कार कर दिया, सर !

शर्माजी : नहीं। स्कूल के गेट पर किसी लड़के ने केले के छिलके बिखरा दिए थे। वे फिसलकर गिर पड़े और एक आटोरिक्शा से उनका पैर कुचल…

सुनील : तो क्या वो…वो…(रोकर) बाबा ! बाबा ! यह मैंने

प्राण : स्कूल के गेट के पास केले के छिलके क्या तुमने फैलाए थे ?

सुनील : अबे, जरा धीरे बोल ! हां, क्या हुआ ?

केदार : बहुत बुरा हुआ !

सुनील : शर्मा फिसलकर गिरा क्या ? टांग-वांग टूटी ?

प्राण : फिसलकर गिरा तो जरूर, पर शर्मा नहीं बल्कि कोई बेचारा बुजुर्ग है एक ! शायद किसी काम से स्कूल ही आ रहा था।

केदार : ओह, बड़ा दर्दनाक दृश्य था। फिसलकर वह सड़क पर जा गिरा और पीछे से तेज रफ्तार से आता हुआ एक आटोरिक्शा उसके पांव कुचलता हुआ निकल गया। तड़पकर बेचारा बेहोश हो गया।

प्राण : च्‌च्‌च, बेचारे के पैर की हड्डी चूर हो गई होगी !

केदार : आसपास के लोग उसे लाद-फांदकर अस्पताल ले गए।

सुरेन्द्र : सचमुच, यह अच्छा नहीं हुआ। बेचारा गरीब नाहक…

सुनील : क्या बेचारा-बेचारा लगा रखा है ! उस आदमी के आंख नहीं थी ? अंधा था क्या ? केले के छिलके पड़े हैं, वह देख नहीं सकता था…

विजय : एक तो तुमने वैसी खतरनाक जगह पर केले के छिलके बिखरा दिए, उलटे…

सुनील : (डांटकर) ज्यादा बात करने की जरूरत नहीं ! कोई मरता है तो मरे, अपनी बला से। तुझे उससे ज्यादा हमदर्दी है तो जा, तू भी अस्पताल में जाकर उसकी सेवा कर।

विनोद : शर्मा मास्टर इसी ओर आ रहा है। मैं भी फूटता

हूं, क्या भरोसा तुम्हारे साथ देखकर मेरा भी मुर्गा बना दे !

[शर्माजी को आता देख एक-एक करके सब वहां से खिसक जाते हैं।]

[दूसरी ओर से शर्माजी प्रवेश करते हैं।]

शर्माजी : अरे सुनील, आज तो तुम समय से पहले स्कूल आ गए?

सुनील : यस सर, एक काम था इसलिए…

शर्माजी : तो ! काम हो गया ?

सुनील : जी ? यस सर, हो गया…

शर्माजी : क्या तुमने बोर्ड-परीक्षा की फीस दे दी है ?

सुनील : नो सर, पिताजी से मैंने कहा था, पर वे कह रहे थे कि कहीं से भी जुगाड़ नहीं हो रहा है।

शर्माजी : जानते हो, आज फीस जमा कराने की आखिरी तारीख है ?

सुनील : यस सर ! पिताजी को भी बता दिया था। उन्होंने कहा था कि वे स्कूल आकर खुद प्रिंसिपल से बात कर लेंगे।

शर्माजी : क्या करते हैं तुम्हारे पिताजी ?

सुनील : छापेखाने में मशीनमैन हैं।

शर्माजी : हूं ! (कुछ रुककर) तुम्हारे पिताजी प्रिंसिपल से मिलने आए तो जरूर थे, पर मिल नहीं सके।

सुनील : क्या प्रिंसिपल ने इन्कार कर दिया, सर !

शर्माजी : नहीं। स्कूल के गेट पर किसी लड़के ने केले के छिलके बिखरा दिए थे। वे फिसलकर गिर पड़े और एक आटोरिक्शा से उनका पैर कुचल…

सुनील : तो क्या वो…वो…(रोकर) बाबा ! बाबा ! यह मैंने

क्या किया !

शर्माजी : क्या हुआ, सुनील ?

सुनील : मैं···मैं बहुत नीच हूं सर ! मैंने ही अपने बाबा का पैर तोड़ा है। मैं दोषी हूं, मुझे सजा दीजिए ! केले के छिलके मैंने ही बिखराए थे, सर ! आपको गिराने के लिए !

शर्माजी : मुझे मालूम है ! तुम हमेशा मुझे अपना दुश्मन समझते रहे, सुनील, जबकि अगर मैं इस स्कूल में न होता तो तुम कबके रस्टीगेट कर दिए जाते। मैंने हर बार प्रिंसिपल को तुम्हें सुधारने की गारंटी दी है।

सुनील : यस, सर···मैंने अपनी हरकतों से स्कूल वालों को काफी तंग किया है। पर···पर···अब मेरी समझ में आ रहा है···जो दूसरों के लिए कुंआ खोदता है, पहले वही उसमें गिरता है !

शर्माजी : लोग स्कूल में अपना भविष्य बनाने के लिए ही आते हैं, सुनील, चरित्र-निर्माण के लिए आते हैं। अगर तुम खुद अपना चरित्र नहीं बनाना चाहते तो उससे भविष्य में तुम्हें खुद इसके लिए सबसे ज्यादा पछताना होगा।

सुनील : आप ठीक कह रहे हैं, सर !

शर्माजी : हर इन्सान को जिन्दगी में ऊपर उठने की कोशिश करनी चाहिए। वह इतना ऊपर उठे कि उसके मां-बाप बड़े गर्व के साथ कहें—देखो, यह हमारा बेटा है ! उसके शिक्षक सीना तानकर कहें—यह हमारा शिष्य है ! मेरी बात समझ रहे हो न ?

सुनील : यस सर !

शर्माजी : इसमें कोई शक नहीं कि तुम बुद्धिमान हो, पर तुम अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करते हो, सुनील !

सुनील : अब···अब नहीं करूंगा सर ! अब मैं कभी स्कूल में किसी को तंग नहीं करूंगा।

शर्माजी : शाबाश, तुमसे मुझे यही उम्मीद थी !

सुनील : मैं···हमेशा के लिए स्कूल छोड़कर जा रहा हूं, सर !

शर्माजी : क्यों ?

सुनील : सर···जब मैं बोर्ड-परीक्षा की फीस ही नहीं भर सकता तो स्कूल में रहने से क्या फायदा !

शर्माजी : लो, यह रही तुम्हारी फीस !
[शर्मा जी जेब से दस-दस के कुछ नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हैं।]

सुनील : यह क्या सर···आप···मेरी फीस दे रहे हैं ?

शर्माजी : हां ! मेरे ही कारण तो तुम्हारे पिताजी घायल हुए हैं न !

सुनील : अब आप मुझे और लज्जित न कीजिए , सर ! मैं आपसे ये पैसे हरगिज नहीं लूंगा !

शर्माजी : मैं ये पैसे तुम्हें कोई भीख में तो दे नहीं रहा हूं, सुनील ! जब बड़े होकर तुम कमाने लगोगे, तब मुझे वापस कर देना ! (सुनील पैसे नहीं लेता) इन्सान की मदद करना इन्सान का फर्ज है···सोचो, तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें लेकर आशा के कितने महल खड़े किए होंगे—तुम पढ़-लिखकर बड़े आदमी बनोगे, उन्हें बुढ़ापे में सुख दोगे···और उन सपनों को पूरा करने के लिए क्या नहीं किया उन्होंने। अब कुछ

दोगे ! जानते हो, इससे उनकी आत्मा को कितना दुःख पहुंचेगा ?

[सुनील पैसे लेकर शर्माजी के चरणों में झुक जाता है।]

सुनील : मुझे आशीर्वाद दीजिए सर, कि मैं सचमुच इन्सान बनूं !

शर्माजी : आशीर्वाद है बेटा ! (सर पर हाथ फेरते हैं) पैसा बड़ी चीज नहीं होती। बड़ी होती है इन्सानियत''अगर तुम मेहनत करके इस साल पास हो गए तो मैं सोचूंगा कि मुझे मेरे पैसे वापस मिल गए।

सुनील : मैं पास होकर रहूंगा, सर ! मैं जी-जान से मेहनत करूंगा !

शर्माजी : आओ, अब अस्पताल चलें—तुम्हारे बाबा के पास। वे तुम्हें याद कर रहे होंगे। घबराओ नहीं, उनके इलाज का प्रबन्ध भी मैं कर आया हूं'''

[सुनील कृतज्ञ दृष्टि से उनकी ओर देखता है।]

सुनील : कभी-कभी एक छोटा-सा तमाशा भी कितना कीमती हो जाता है, सर !

शर्माजी : और कभी-कभी छोटे-छोटे तमाशे इन्सान की जिन्दगी को बदल देते हैं। है न ?

सुनील : यस सर !

[शर्माजी और सुनील जाते हैं। परदा गिरता है।]

देश के दुश्मन

पात्र

⊙

एक पाकिस्तानी जासूस	सूरदास
गांव के किशोर	सूरज
	करीम
	बलवन्त
	आर्थर
	सुबोध

स्थान

⊙

पंजाब के एक सीमावर्ती गांव में
स्थित मंदिर का आंगन

काल

O

दिसम्बर, १९७१

[परदा खुलने पर एक छोटे मन्दिर का खंडहर दिखाई पड़ता है। उसके बगल में एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ है, जिसके तने के पास एक चौंतरा बना दिया गया है। चौंतरा भी इधर-उधर से टूट गया है। आस-पास पीपल की सूखी पत्तियां और घास-फूस बिखरे पड़े हैं।]

परदा खुलने के क्षण भर बाद सूरज, करीम, आर्थर और बलवंत प्रवेश करते हैं। चारों स्कूली छात्र। उम्र १५-१६ के करीब। वेश-भूषा में पतलून व शर्ट-बुशर्ट प्रमुख है। बलवंत व करीम कंधे पर बाल्टी लटकाए हुए हैं और हाथों में एक-एक मग है, जबकि सूरज और आर्थर के कंधों से बूट-पॉलिश का स्टैण्ड लटक रहा है। उनके हाथों में ब्रुश हैं।]

सूरज : (मन्दिर के करीब जाकर आवाज देता है) सूरदास! ओ बाबा सूरदास! आज हमें प्रसाद नहीं दोगे क्या?
[अंदर से सूरदास की कांपती आवाज सुनाई पड़ती है।]

सूरदास : दूंगा क्यों नहीं बेटा! एक मिनट रुको, मैं अभी आया।

करीम : जल्दी करो, बाबा, आज हमें बड़ी दूर जाना है।
[सूरदास प्रवेश करता है। अधेड़ उम्र। बाल अधपके। शरीर पर सिर्फ एक धोती। पैरों में खड़ाऊं। गले में रुद्राक्ष माला, माथे पर त्रिपुण्ड और हाथ में लाठी, जिससे टटोल-टटोल कर वह आगे बढ़ता है।]

सूरदास : आज तुम लोग इतने सवेरे आ गए?

बलवंत : जाना भी तो बहुत दूर है, बाबा!

सूरदास : कहां जा रही है आज चांडाल-चौकड़ी ?
आर्यर : मैं और सूरज तो शहर जा रहे हैं।
सूरदास : शहर जा रहे हो ! क्यों ?
सूरज : हम वहां बूट-पॉलिश करके पैसे इकट्ठा करेंगे और उन पैसों से सीमा पर तैनात जवानों के लिए मिठाई खरीदेंगे।
सूरदास : अच्छा !
बलवंत : हां बाबा ! मैं और करीम सीमा पर प्यासे जवानों को पानी पिलाने जा रहे हैं !
सूरदास : बड़ी अच्छी बात है, बेटा ! पर जहां हमारे फौजी जवान तैनात हैं, सीमा तो वहां से पांच मील दूर है। तुम लोग जाओगे कैसे ?
करीम : पैदल और कैसे ?
सूरदास : इतनी दूर ?
बलवंत : हमारे लिए, हमारे देश की रक्षा के लिए, वे तो जान की बाजी लगाकर लड़ रहे हैं और हम उनके लिए इतनी दूर पैदल भी नहीं जा सकते क्या ?
सूरदास : क्यों नहीं, बेटा ! अगर हौसले बुलंद हों तो बड़ी से बड़ी दूरी तय हो जाती है। मुझे हा देखो। जब मंदिर पर बम गिराकर उसे तबाह कर दिया गया और बारूद से मेरी आंखें जाती रहीं, तब भी मैं अठारह-बीस मील की दूरी तय करके यहां तक आ पहुंचा !
सूरज : तुम्हारी बात अलग है, बाबा, तुम्हारी मदद तो भगवान भी करते हैं ! रोज पूजा करते हो न, इसलिए !
आर्यर : अच्छा, अब जल्दी से हमें प्रसाद दे दीजिए, हम चलें !

सूरदास : बेटा सूरज, अन्दर से प्रसाद का थाल तो ले आओ !

[सूरज मन्दिर के अन्दर जाता है।]

सूरदास : पर बच्चो, मैंने सुना है कि सीमा पर किसी को जाने नहीं दिया जाता ! फिर तुम लोग वहां कैसे···

बलवंत : आपको मालूम नहीं क्या कि करीम के अब्बाजान फौज में कप्तान हैं ! फिर भला हमें वहां जाने से कौन रोकेगा !

करीम : और वैसे भी हम एक भले काम के लिए जा रहे हैं !

[सूरज हाथ में प्रसाद का थाल लिए बाहर आता है। सूरदास थोड़ा-थोड़ा प्रसाद उठाकर सबकी हथेली पर रखता है। सूरज दोबारा हाथ फैलाता है।]

आर्थर : क्यों रे, डबल ले रहा है ! सोचता है, बाबा को दिखाई नहीं पड़ता तो मैं डबल ले लूं !

सूरज : वाह, थाली लाने की मेहनत भी तो मैंने की है।

सूरदास : (हंसकर) हां-हां, ले लो बेटा ! (सूरज की फैली हथेली पर प्रसाद रखता है।)

सूरज : (प्रसाद खाकर) थाली अन्दर रख दूं बाबा ?

सूरदास : नहीं, मैं रख लूंगा, बेटा ! तू इसे चौंतरे पर रख दे !

[सूरज थाली चौंतरे पर रख देता है। लाठी से टटोलता हुआ सूरदास चौंतरे तक आता है और फिर उस पर बैठ जाता है।]

बलवंत : हम चलते हैं, बाबा ! शाम को लौटेंगे तो आगे का हाल बताएंगे।

सूरदास : जाओ बेटा ! भगवान करे, तुम सब सफल होओ !

[चारों चले जाते हैं। सूरदास बैठकर एक भजन गुनगुनाता है। तभी सुबोध वहां आता है—सूरज आदि का हम-उम्र।

शरीर पर पतलून व बुशर्ट ।]

सूरदास : कौन ? कौन है ?

सुबोध : मैं हूं बाबा, सुबोध !

सूरदास : कहां से आ रहे हो, बेटा ?

सुबोध : जरा मोर्चे की ओर निकल गया था···आपने सुना नहीं, बाबा, हमारी सेना पीछे हट रही है । किसी भी पल इस गांव पर खतरा आ सकता है ।

सूरदास : हे भगवान, यह मैं क्या सुन रहा हूं ।

सुबोध : गांववालों को अब या तो अपनी जान देने के लिए तैयार रहना चाहिए या फिर गांव छोड़ देने के लिए ।

सूरदास : तो क्या हमारे सिपाही बहादुरी से नहीं लड़ रहे हैं ?

सुबोध : लड़ तो रहे हैं, बाबा, पर हमारे ही बीच कोई ऐसा देश का दुश्मन पैदा हो गया है, जो यहां का सारा भेद दुश्मनों तक पहुंचा देता है। कब किस ओर से कैसा हमला होगा यह उन्हें वक्त से पहले मालूम हो जाता है । वे सावधान हो जाते हैं और हमला करने वाली हमारी सेना को लेने के देने पड़ जाते हैं ।

सूरदास : तो ऐसे देश के दुश्मन को गोली क्यों नहीं मार देते !

सुबोध : पर पहले मालूम तो हो कि कौन है यह दुश्मन !

सूरदास : तुम्हारा भी कहना ठीक ही है···

सुबोध : मैं चलता हूं बाबा, जरा जल्दी में हूं। मुझे घर तक यह खबर पहुंचानी है ।

सूरदास : हां-हां, जाओ बेटा !

[सुबोध तेजी से दूसरी ओर चला जाता है। पल भर बाद ही सूरज और आर्थर उदास से प्रवेश करते हैं ।]

सूरज : आप अभी तक यहीं बैठे हैं, बाबा ?

सूरदास : अरे, तुम लोग इतनी जल्दी लौट आए ?

आर्थर : रास्ते में हमें एक बुरी खबर मिली, इसलिए हम लौट पड़े, बाबा ! हमारे फौजी जवान पीछे हट रहे हैं। दुश्मनों का कोई जासूस हमारे ही बीच में है, जो हमारी सेना की सारी खबर उन तक पहुंचा रहा है।

सूरदास : तुम लोग बहुत नादान हो, आंखें रहते हुए भी अंधे हो ! मैं अंधा हूं तो क्या हुआ, इन्सान की जबान से ही उसके अन्दर क्या है, समझ जाता हूं।

सूरज : मैं आपका मतलब नहीं समझा, बाबा !

सूरदास : तुम लोग भोले हो बेटे, तुम क्या समझोगे ? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि करीम किसका बेटा है ! फौज के कप्तान का न ! फौज और फौजियों का भेद उससे बेहतर दूसरा कौन जान सकता है !

आर्थर : तो क्या करीम...

सूरदास : यह बताओ, वह सीमा पर जाता क्यों है ?

सूरज : इसलिए कि वह फौजी का बेटा है और उसे वहां कोई रोक नहीं सकता।

सूरदास : हो सकता है वह इसका नाजायज फायदा उठा रहा हो, क्योंकि दूसरी ओर जो लड़ रहे हैं वे उसी की जात के ही तो हैं ! और अपने जात-भाइयों के लिए हमदर्दी तो सभी को होती है !

आर्थर : हां, यह तो सच है...लेकिन...

सूरदास : देखो बेटा, मैं दुनिया से अलग-थलग पड़ा हूं। गांव-वालों से दो रोटी पा जाता हूं और दिन भर हरि-भजन किया करता हूं। गुजारा तो हो ही रहा है। मेरी किसी से क्या दुश्मनी ! हां, जो बात मन में खटक रही थी, वह तुम्हें बता दी...

सूरज : (होंठ भींचकर) ठीक है, आने दो आज करीम के बच्चे को ! उसे अपने दल से ही निकाल बाहर करूंगा।

आर्थर : ऐसे गद्दार का अपने साथ रहना ठीक नहीं ! बल्कि हो सके तो हममें से किसी को उस पर कड़ी नजर रखने के लिए भी पीछे लगा दो।

[उसी समय करीम और बलवंत लौटते हैं।]

बलवंत : गांव में ही मोर्चे से वापस लौटते हुए एक सिपाही ने हमें बताया कि हम आज सीमा पर नहीं जा सकते, क्योंकि वहां बड़ी घमासान लड़ाई चल रही है। इसलिए हम वापस लौट आए।

करीम : सुना है, अपनी सेना पीछे हट रही है।

सूरज : यह सुनकर तुम्हें तो बड़ी खुशी हुई होगी। क्यों ?

करीम : क्या ! मुझे खुशी क्यों होगी भला !

सूरज : क्योंकि तुम्हारी जाति के दुश्मनों की जीत हो रही है न ! और शायद तुम अच्छी तरह जानते हो कि यह जीत क्यों हो रही है !

करीम : सच, मुझे कुछ नहीं मालूम ! बात क्या है···

आर्थर : तुम्हें नहीं मालूम होगा तो और किसे मालूम होगा। फौज में कप्तान हमारे पिताजी तो हैं नहीं !

बलवंत : तुम लोग आज इस तरह क्यों बातें कर रहे हो ? आखिर हो क्या गया···

सूरज : अब होने को और बाकी क्या रहा है ! कोई हमारी सेना की खबर गुप्त रूप से हमारे दुश्मनों तक पहुंचाता है।

बलवंत : और तुम्हें शक है कि करीम···

आर्थर : हां, क्योंकि यह कप्तान का बेटा है और हिंदू नहीं है। सेना के बारे में जानकारी हमें नहीं, उसे ही अपने

अव्वा के जरिए मिल सकती है।

करीम : ओह, अब समझा। तुम लोगों का खयाल है कि मैं दुश्मनों तक···

सूरज : खयाल ही नहीं, पूरा यकीन है···

करीम : जब मुझसे बिना कुछ पूछे ही तुम लोगों ने अपना यकीन बना ही लिया तो···तो···मैं कह ही क्या सकता हूं···

आर्थर : तुम कहो भी तो यहां तुम्हारी सुनने वाला कौन है !

सूरज : आज से हम लोगों से तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। अपनी भलमनसाहत दिखाने के लिए जो घर से दो बाल्टियां तुम ले आए थे, उन्हें भी ले जाओ।

[बलवंत उपेक्षा से ठोकर मारकर बाल्टी गिरा देता है।]

करीम : मैं नहीं जानता था, तुम लोग इतने नीच हो !

सूरज : (चीखकर) करीम ! संभलकर बात कर, नहीं तो जबान खींच लूंगा !

करीम : ये आंखें किसी और को दिखा, सूरज ! मैं सिर्फ इसलिए गद्दार हो गया कि मैं मुसलमान हूं ! पर इतना समझ लो, मेरा मन तुम लोगों से ज्यादा साफ है। मुझ पर गद्दारी का आरोप लगाने वाले तुम सब गद्दार हो !

[बलवंत झपटकर एक चांटा करीम के गाल पर मारता है।]

बलवंत : किसे गद्दार कहता है !

करीम : (गाल पर हाथ रखकर) तुमने मुझे मारा ! याद रखना बलवंत, इसका अंजाम बहुत बुरा होगा।

बलवंत : जा, जा ! तुझे जो करना हो कर लेना। ज्यादा बातें करेगा तो अभी यहीं कीमा बना दूंगा।

करीम : ठीक है, वक्त आने पर मैं देख लूंगा।

[दोनों थालियां उठाकर तेजी से चल देता है।]

सूरज : इस पर नजर रखना। ज्यादा इधर-उधर दांव चलाने की कोशिश करे तो वहीं पकड़कर अच्छी तरह कुटाई कर देना।

सूरदास : ध्यान रखना, बेटा ! वह यहां की फौज के कप्तान का बेटा है !

सूरज : कप्तान का बेटा होगा अपने घर !

आर्थर : पहले तो कुटाई कर ही देंगे, बाद में जो होना होगा, होता रहेगा !

सूरज : आओ, जरा बूट-पॉलिश का सामान रख आएं और देखें गांववालों के क्या हाल-चाल हैं ?

[सब उठकर जाते हैं। सिर्फ सूरदास वहां रहता है।]

सूरदास : (गाते हुए) मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई···

[दृश्य परिवर्तन के लिए मंच पर का प्रकाश बुझ जाता है। पल भर बाद जब प्रकाश होता है, तो चौतरे पर सूरदास उसी तरह बैठा एक हाथ में माला फेर रहा दिखाई देता है। कुछ देर बाद वहां करीम प्रवेश करता है।]

करीम : सूरज यहां आया था क्या, बाबा ?

सूरदास : दोपहर को आया था। बाद में तो नहीं आया। क्यों ?

करीम : मैं उससे मिलना चाहता हूं।

सूरदास : उन लोगों ने तुझे इतना जलील किया, फिर भी तू उनसे मिलना चाहता है !

करीम : दोस्ती में इतनी झड़प तो चलती ही है, बाबा !

सूरदास : अभी भी तू उसे अपना दोस्त मानता है ?

करीम : हां ! इतना जरूर है कि वह बहक गया है। और अगर गहराई से सोचा जाए तो बात कुछ हद तक सही भी है, बाबा ! आज जबकि सीमा पर युद्ध चल

रहा है तो हमारी कौम का आदमी कितना भी वफादार क्यों न हो, हर हिन्दू उसे शक की नज़र से देखता है। बड़े-बड़े लोग धोखा खा रहे हैं, फिर बेचारे सूरज का क्या दोष !

सूरदास : हां, तेरा कहना भी ठीक है···

करीम : पर आप यह न समझना कि मैं सूरज से माफी मांगने और हाथ मिलाने के लिए उसे ढूंढ रहा हूं···

सूरदास : फिर ?

करीम : मैं उससे पूछना चाहता हूं, यह सब क्या तमाशा है ! मैं जहां भी जाता हूं सूरज का कोई न कोई चेला मेरे पीछे लगा ही रहता है। आखिर वे मुझे समझते क्या हैं ?

सूरदास : समझते क्या हैं, यह तो उसने तुम्हें बता ही दिया है। गद्दार ! धोखेबाज ! दुश्मनों का साथी !

करीम : सच बताना बाबा, क्या मैं आपको गद्दार लगता हूं ?

सूरदास : किसी के चेहरे पर यह लिखा तो नहीं होता बेटा कि वह क्या है। और अन्दर की बात तो हरि ही जानें। (रुककर) लेकिन बलवंत ने तुझे तमाचा मारा और तू चुप बैठ गया !

करीम : अगर कोई इन्सान एक गलती करे तो यह जरूरी नहीं कि मैं भी उसे दोहराऊं !

सूरदास : मैं तुझे कुछ करने को थोड़े ही कह रहा था···मैं तो यही कह रहा था कि तू यह सब अपने अब्बा को बता दे !

करीम : क्या फायदा होगा। अब्बाजान के सामने तो देश की रक्षा की समस्या है। अपने इन छोटे-मोटे वाहियात झगड़ों को सुनाकर उन्हें क्यों तंग करूं।

सूरदास : यह वता, लड़ाई के क्या हाल-चाल हैं ?

करीम : अभी तक तो हमारी सेना के हौंसले पस्त पड़े हुए हैं, पर अब्बा वता रहे थे···

[एकाएक कुछ सोचकर करीम रुक जाता है।]

सूरदास : अरे, तू कहते-कहते रुक क्यों गया ?

करीम : यह वहुत खास और गुप्त वात है, वावा ! यह मैं किसी को नहीं वता सकता। मैं गांव के वाहरी कैंप पर अब्बा के लिए सेवैंयां पहुंचाने गया था, तब इसी वात पर वे अपने अफसरों से वात कर रहे थे।

सूरदास : यह वात किसी से वताना भी नहीं वेटा !

करीम : हां वावा, कौन जानता है, किसी के मन में क्या है। हो सकता है, कोई इसे सुनकर दुश्मनों तक पहुंचा दे।

सूरदास : ठीक कह रहा है तू ! तो क्या अभी शाम से···

करीम : मैंने कहा न वावा, यह वड़ी खास वात है, मैं किसी को नहीं वता सकता !

सूरदास : मैं पूछता भी नहीं वेटा, पर मन नहीं मानता। हमेशा यही डर लगा रहता है कि कहीं यहां से भी भगवना के चरण छोड़कर भागना न पड़े।

करीम : इत्मिनान रखो वावा, यह जगह छोड़कर आपको कहीं जाना नहीं होगा।

सूरदास : अच्छा, कैसे ?

[करीम चारों तरफ और इधर-उधर देखता है।]

करीम : शाम को हमारे जवानों की दो और वटालियन आ रही हैं। दाईं और वाईं दोनों तरफ से दुश्मनों को घेर लेंगी। चूंकि दुश्मन का सारा ध्यान सामने की ओर लगा है, इसलिए दोनों ओर से दवाव पड़ते ही वे घवराकर पीछे भागेंगे।

सूरदास : वाह, बहुत बढ़िया योजना है !

करीम : किसी से भूल से भी इसका जिक्र न करना, बाबा !

सूरदास : मुझे क्या पड़ी है जो औरों से कहता फिरूं।

करीम : (उठकर) अच्छा बाबा, मैं जरा सूरज को देखता हूं। वह अगर यहां आ जाए तो आप उसे रोक लीजिए। मैं थोड़ी देर में आता हूं।

[करीम चला जाता है। सूरदास इधर-उधर सिर घुमाकर देखता है, फिर लाठी वहीं छोड़कर भागता हुआ मंदिर के खंडहर के अन्दर जाता है। पल-भर में वह बगल में कपड़े की एक बड़ी-सी पोटली दबाकर लौटता है। वह चौतरे पर आकर बैठता है और पोटली खोलता है। पोटली से एक प्लास्टिक का बैग निकलता है। बैग का का चैन खोलकर वह टेलीफोननुमा एक यंत्र निकालता है, जिसमें बिजली का तार फिट् है। फिर एक छोटा-सा चौकोर यंत्र निकाल-कर चौतरे पर रख देता है। इस यंत्र में घड़ी की तरह दो तीन डायल बने हुए हैं। फिर उससे संलग्न तार का एक सिरा, जिस पर दो मोटे कील जैसे अवयव लगे हुए हैं, वह जमीन में गाड़ देता है और फोन को मुंह के करीब लाकर बातें करता है।]

सूरदास : (फोन पर) हेलो···हेलो···सेवन एट सिक्स···मैं ऊड़ी गांव से एजेंट तीन चार सात बोल रहा हूं···येस, येस मेजर रहमान···अर्जेंट न्यूज···। बहुत खास···

[इसी समय सूरज और बलवंत प्रवेश करते हैं।]

सूरज : यह क्या हो रहा है, सूरदास ?

[घबराहट में सूरदास के हाथ से टेलीफोननुमा यंत्र गिर जाता है।]

सूरदास : तु···तु···तुम !

बलवंत : क्या कर रहे थे तुम ?

सूरदास : (प्लास्टिक के बैग में हाथ डालते हुए) अपने साथियों को एक खास खबर भेज रहा था।

सूरज : लेकिन सूरदास तुम···

सूरदास : शट-अप ! मैं न तो अंधा हूं और न सूरदास ! मैं पाकिस्तानी फौज का मेजर रहमान हूं। मैं वेश बदलकर यहां की सारी हरकतों की खबर अपने देश की सेना को भेजता रहा हूं।

सूरज : (दांत पीस कर) तो तुम थे गद्दार !

[सूरज उसकी ओर झपटता है। सूरदास प्लास्टिक के बेग से हाथ निकालता है। उसके हाथ में रिवाल्वर है, जिसे वह सूरज की ओर तान देता है।]

सूरदास : पीछे हटो !

बलवंत : (सूरज से) हमने बेकार करीम पर शक किया। असली गद्दार तो यह है।

सूरज : आज तक हम नाग को दूध पिलाते रहे, आज वह हमें ही डसने को खड़ा हो गया !

सूरदास : अब जब तुम लोगों ने मेरा भेद जान ही लिया है तो तुम लोगों का जिन्दा रहना खतरनाक है।

बलवंत : तो तुम बचकर कहां जाओगे !

सूरदास : मुझे कहीं जाना नहीं होगा, क्योंकि रात तक इस गांव पर हमारा कब्जा हो जाएगा !

[तभी पीछे से करीम आता है। सूरदास को इस स्थिति में देखकर वह दूर ही ठिठककर रुक जाता है और कुछ क्षण तक सोचता है। फिर वह दबे पांव सूरदास के पीछे पहुंच जाता है। एकाएक उसे जोर का धक्का देता है। अचानक धक्के से सूरदास मुंह के बल गिर जाता है और

उसके हाथ से रिवाल्वर छूट जाता है। करीम उसे दबोच लेता है। अब तक बलवंत भी सूरदास पर टूट पड़ता है। सूरज झपटकर रिवाल्वर उठा लेता है।]

सूरज : इतनी आसानी से हमारे हाथ से बचकर तू नहीं जा सकता, शैतान !

[सूरदास ऊपर आने को संघर्ष करता है। करीम और बलवंत उसे दबोच लेते हैं। तभी आर्थर भी आ जाता है।]

आर्थर : अरे, सूरदास को फ्री-स्टाइल का शौक कब से हुआ ?

सूरज : जब से यह सूरदास से मेजर रहमान बना।

आर्थर : (चौंककर) मेजर रहमान ! यह क्या बला है ?

सूरज : यह मैं बाद में समझाऊंगा। पहले इलेक्ट्रिक के उस तार से इसके दोनों हाथ कसकर बांध दो !

[आर्थर जोर लगाकर उस यंत्र और फोन में लगे तार को तोड़ देता है। करीम और बलवंत घुटनों के नीचे जमीन पर सूरदास के दोनों हाथ दबाकर बैठ जाते हैं। आर्थर पूरी तरह से उसके दोनों हाथ कस देता है। बलवंत और करीम उठ खड़े होते हैं।]

सूरज : करीम, माफ करना भाई, हमने तुम्हें गलत समझा।

बलवंत : मुझे भी माफ कर दो, करीम, मैंने तुम पर हाथ उठाया था न !

करीम : (हंसकर) दोस्ती में इतनी धींगामुश्ती तो चलती ही है। (वह बलवंत को गले लगा लेता है।) अब चलो, पहले इस बदमाश को ले जाकर गांव के बाहर कैंप में सेना के अधिकारियों को सौंप आएं।

[आर्थर और बलवंत सूरदास की बांह पकड़कर घसीटते हैं। सब जाते हैं। धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

हम सब एक हैं

पात्र

⊙

गांव के स्कूल का मास्टर	रमाकांत
एक हरिजन बालक	रामू
गांव की पंचायत के सदस्य	पं० बैजनाथ चन्दू साव पटेल चौधरी

स्थान

○

भारत का एक छोटा-सा गांव

काल

⊙

सन् १९७२

[परदा खुलते ही एक छोटे से गांव का चौराहा नजर आता है।
कोने की ओर नीम का एक बड़ा पेड़ है, जिसके नीचे मिट्टी का चौंतरा
बना हुआ है।

क्षण भर बाद त्रिपुण्डधारी पंडित बैजनाथ शर्मा एक हाथ से आठ-
नौ वर्षीय बालक रामू की बांह पकड़े और दूसरे हाथ से उसे तमाचे
जमाते हुए प्रवेश करते हैं। बीच-बीच में तमाचा मारने के साथ उसे
झकझोरते भी जाते हैं।

अधेड़ अवस्था के पंडित बैजनाथ के बदन पर एक छोटी धोती है।
ऊपरी बदन नंगा, कंधे से झूलता जनेऊ और गले में रुद्राक्ष माला तथा
पैरों में खड़ाऊं है। सिर पर लंबी-सी चोटी, जिसमें इस समय गांठ
बंधी हुई है। कंधे पर अंगोछा।

रामू के बदन पर एक मैली निकर व फटी-सी बनियाइन है। नंगे
पांव सुबक रहा है।]

बैजनाथ : (तमाचा जमाकर) बोल, किसके कहने पर गया था
तू?

रामू : (रोता हुआ) मुझे मत मारो! मुझे छोड़ दो···मैंने
कुछ नहीं किया···

बैजनाथ : कुछ नहीं किया! हमारा जात धरम सब भिरस्ट
कर दिया और कहता है, कुछ नहीं किया! बोल
क्यों गया था तू वहां? अब जाएगा? (तमाचा
मारता है।)

[गांव के प्राइमरी स्कूल के युवक मास्टर रमाकांत का

प्रवेश। अवस्था कोई २८-३० के लगभग। इकहरा किन्तु स्वस्थ्य बदन, चेहरे पर सौम्यता। पहनावे में खद्दर की धोती, कुर्ता व जाकेट तथा पैरों में चप्पल।]

मास्टर : अहंह्, क्यों मार रहे हो बच्चे को पंडित जी ?

बैजनाथ : मारूं नहीं तो क्या पूजा करूं ! (एक तमाचा और जड़ देता है।)
[रमाकांत करीब जाकर झटके से रामू को उसकी पकड़ से अलग करता है। रामू मास्टरजी की धोती में सिर छिपाकर सुबकता है।]

मास्टर : क्यों मार रहे थे बच्चे को ? ऐसा क्या हो गया ?

बैजनाथ : यह पूछो कि अब होने को बाकी क्या रहा !

मास्टर : आखिर कोई बात भी तो होगी।

बैजनाथ : यह सब तुम्हारी कारस्तानी है, मास्टर ! जबसे तुम इस गांव में मास्टर बनकर आए हो, गांव के बच्चों को उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ाकर उनकी मति भिरस्ट कर रहे हो !

मास्टर : क्या कह रहे हो पंडितजी ? मैं लड़कों को भ्रष्ट कर रहा हूं ?

बैजनाथ : और नहीं तो क्या ?
[चन्दू साव का प्रवेश। अवस्था ४०-४५ के लगभग। बदन पर धोती, बंडी और सिर पर साफा बंधा हुआ। पैरों में नोंकदार चमरौधा जूता।]

चन्दू : क्या बात है पंडित, क्यों सुबह-सुबह गला फाड़ रहे हो ?

बैजनाथ : अंधेर हो गया, भैया, अंधेर हो गया ! इस गांव से धरम-करम बिलकुल उठ गया। सवेरे स्नान करके मंदिर में फूल चढ़ाने गया तो देखा यह लड़का मंदिर

में घुसा हुआ है। (मुंह बनाकर) छि: छि: छि:, मंदिर को भी अपवित्र कर दिया और भगवान को भी अशुद्ध कर डाला।

मास्टर : यह लड़का मंदिर में चला गया तो भगवान के अशुद्ध होने की कौन-सी बात हो गई?

बैजनाथ : लो, सुनो मास्टर की बात! मंदिर में कोई शूद्र घुस जाए तो फिर भगवान क्या शुद्ध रह जाएगा!

चन्दू : रामू हरिजन है, मास्टर!

मास्टर : यह मैं जानता हूं। पर क्या हरिजन इन्सान नहीं होते?

बैजनाथ : यहां लचकर देने की जरूरत नहीं। हमारे वेदों-पुराणों में जो लिखा है...

मास्टर : किसी वेद और पुराण में यह नहीं लिखा है कि शूद्र अछूत हैं। शबरी तो जाति की भीलनी थी, भगवान राम ने उसके हाथ से फिर बेर क्यों खाए थे?

बैजनाथ : (सहमकर) तर्क मत कर! चार चोपड़ी क्या पढ़ लिया, अपने को बड़ा सयाना समझने लग गया।

मास्टर : ठीक कह रहा हूं, पंडितजी! अगर यह अछूत है तो अभी कुछ देर पहले आप इसे पकड़कर पीट क्यों रहे थे?

बैजनाथ : तो तुम क्या सोचते हो कि मैं ऐसे ही घर चला जाऊंगा? पहले जाकर स्नान करूंगा, फिर अपने ऊपर चार-छह बूंदें गंगाजल की छिड़कूंगा, तब कहीं जाकर घर में प्रवेश करूंगा!

मास्टर : गंगाजल छिड़कने से ही मन का मैल साफ नहीं होता, पंडित!

बैजनाथ : ज्यादा बक-बक मत करो मास्टर! मैं जानता हूं,

यह सारी आग तुम्हारी ही लगाई हुई है। तुम लड़कों को स्कूल में सिखाते हो कि कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं, सब बराबर हैं…

मास्टर : तो क्या गलत सिखाता हूं !

चन्दू : इसका मतलब यह हुआ कि तुम हंस और कौए को एक ही पांत में बिठाना चाहते हो ?

मास्टर : हां, क्योंकि दोनों पक्षी कहलाते हैं। अपने बीच यह भेदभाव की दीवारें हमने ही बनाई हैं, नहीं तो हम सब एक ही परमेश्वर के पुत्र हैं, इन्सान हैं !

बैजनाथ : लो सुनो, इसकी बुद्धि को ! जात-पांत इन्सान ने बनाए हैं ! अरे मास्टर, जात-पांत इन्सान नहीं बनाता, पूर्व जनम में जो जैसे करम करता है वैसे ही कुल में उसे यहां जन्म मिलता है।

मास्टर : ये सब बेकार की बातें हैं ! तुम जैसे दकियानूसी खयाल के लोगों ने इसे अपने मन से गढ़ लिया है। क्या सचाई है इसमें ?

बैजनाथ : सचाई मैं बताता हूं। जिस तरह पूरब-पश्चिम की दिशाएं आपस में नहीं मिल सकतीं, उसी तरह शूद्र कभी ब्राह्मण और क्षत्रिय की बराबरी नहीं कर सकता।

मास्टर : पंडित यह बात तो उस दिन कहनी थी, जब तुम्हारा बेटा तालाब में डूब रहा था और महदू भंगी का बेटा उसे पानी से निकालकर लाया था। तब तुमने उसे हाथ लगाने को मना क्यों नहीं किया ?

बैजनाथ : तुम सोचते हो, महदू भंगी के बेटे ने उसे बचाया था ? अरे, वह तो भगवान की मरजी से बचा, नहीं तो…

मास्टर : मैं कहता हूं, अगर महदू का बेटा वहां न होता तो क्या भगवान आता उसे बचाने ?

चन्दू : तुम तो नास्तिकता की बातें करने लगे, मास्टर !

मास्टर : यह नास्तिकता की बात नहीं है, चन्दू साव ! अगर यह बात ठीक भी हो कि भगवान ने उसे बचाया था, पर उसके लिए उसने महदू के बेटे को ही तो निमित्त बनाया था। जानते हो क्यों ? इसलिए कि तुम सब की आंखें खुल जाएं ! तुम सभी इन्सानों को बराबरी का दर्जा दो। उन्हें इन्सान की नजर से देखो।

[इसी समय तेजी से गांव का पटेल प्रवेश करता है। अवस्था ४५-५० के बीच। बदन पर साफ धोती, कुर्ता। सिर पर साफा व पैरों में जूते। बड़ी-बड़ी मूंछें।]

पटेल : (बिफरकर) मैं कहता हूं, बहुत बुरा हो जाएगा, मास्टर !

चन्दू : क्या हो गया, पटेल ?

पटेल : जब से यह मास्टर गांव में आया है साव जी, रोज नए-नए सिरदर्द पैदा कर रहा है।

मास्टर : मैंने क्या किया, पटेलजी ?

पटेल : बड़ा भोला बन रहा है। क्या तुमने स्कूल में लड़कों को नहीं सिखाया कि छुआछूत मानना बेकार है।

मास्टर : तो क्या हो गया ?

पटेल : अरे, हम कहते हैं, हमारे जीने के लिए भी कोई रास्ता रहेगा ? बुधवा चमार की घरवाली अभी कुंए पर पानी भर रही थी। मैंने टोका, तो बोली कि बेटवा को मास्टर ने सिखाया है कि सब बराबर हैं ! सच कहता हूं, अगर औरत जात न होती तो

मैं उसकी टांगें तोड़ देता ।

बैजनाथ : उसकी टांग क्यों तोड़ते हो, सारे झगड़े की जड़ तो है, यह मास्टर !

पटेल : मास्टर अभी भी चेत जाओ, नहीं तो अंजाम बहुत बुरा होगा !

मास्टर : अंजाम के डर से मैं वह काम बन्द नहीं करूंगा, जिससे लोगों की भलाई होती हो ।

चन्दू : मैं कहता हूं, ऐसे कुकर्मों से ही इसने देवी के प्रकोप को भड़का दिया है । नहीं तो हमारे गांव में दस साल से कभी देवी की दया नहीं हुई थी ।

मास्टर : तुम लोग जिसे देवी की दया कहते हो, उसे चेचक की बीमारी कहते हैं । अगर दवा देकर उस पर रोक न लगाई गई तो वह फैलती ही जाएगी ।

बैजनाथ : और इसलिए तुम घर-घर जाकर दवा की गोलियां बांटते फिर रहे हो ।

मास्टर : हां । क्योंकि तुम्हारे अंधविश्वास का शिकार होकर मैं लोगों को मरते नहीं देख सकता ।

चन्दू : लो, सुन लो इसकी बात !

पटेल : देखो मास्टर, अगर इस गांव में रहना है तो तुम्हें गांववालों की मरजी से चलना होगा ।

बैजनाथ : और ऐसा ही ऊल-जलूल अगर तुम स्कूल में लडकों को सिखाते रहे तो कल से हम अपने लडकों को भी स्कूल नहीं भेजेंगे ।

मास्टर : मत भेजो ! उनके पढ़ने-लिखने से मेरा नहीं बल्कि उन्हीं का भविष्य बनेगा !

चन्दू : तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों में हरिजन ही आ सकते हैं, हम नहीं ।

बैजनाथ : और हम आखिरी बार तुमसे कहे दे रहे हैं, मास्टर ! अगर तुम अपनी हरकत से बाज नहीं आए तो तुम इस गांव में नहीं रह सकते ।

पटेल : (समझाते हुए) कोई जीता-मरता है, उससे तुम्हें क्या लेना-देना है । चुपचाप स्कूल में लड़कों को पढ़ाओ और अपना गुजारा करो, पर सही शिक्षा देकर !

मास्टर : सही शिक्षा देने पर ही तो तुम लोग इतने नाराज हो रहे हो । और पटेल, इन्सान वह नहीं है, जो अपने लिए जीता है, बल्कि इन्सान तो वही होता है जो दूसरों के लिए जीता है ।

चन्दू : तुमने फिर बकवास शुरू कर दी !

मास्टर : बकवास नहीं, सच कह रहा हूं, चन्दू साव ! तुम लोगों के जीवन का ध्येय भले ही यह हो सकता है—दो वक्त पेट भरना और अपनी गुजर करना, पर मेरे जीवन का ध्येय यह नहीं है !

पटेल : बड़ी-बड़ी बातें मत करो, मास्टर ! जब तुम खुद बुजुर्गों से जबान लड़ा रहे हो तो भला स्कूल में हमारे लड़कों को क्या सलीका सिखाओगे !

मास्टर : यह जरूर सिखाऊंगा कि गलत बात, चाहे कोई भी क्यों न कहे, आंख मूंदकर वे न मानें !

[क्रोध में बिफरते हुए चौधरी का प्रवेश । वेशभूषा पटेल जैसी, सिर्फ सिर पर साफा नहीं । अवस्था ४५-५० के बीच ।]

चौधरी : (क्रोध से कांपते हुए) मैं तुम्हारा खून पी जाऊंगा, मास्टर !

मास्टर : नाराज क्यों हो रहे हो, चौधरी ?

चौधरी : तुमने ही मेरी बच्ची को कुछ देर पहले दवा दी थी ?

मास्टर : हां, उसकी हालत ठीक नहीं थी, इसलिए मैंने दवा दी थी।
चौधरी : किससे पूछकर दी? क्यों दी?
मास्टर : क्या मैंने कोई गलत काम किया है?
चौधरी : गलत! अरे, तूने दवा देकर देवी को रुष्ट कर दिया! अब मेरी बच्ची बचेगी नहीं।
मास्टर : धीरे-धीरे जब दवा का असर होगा, सब ठीक हो जाएगा, मुझे विश्वास…
चौधरी : (चीखकर) चुप रह, शैतान!
पटेल : पानी सिर से ऊपर जा चुका है, पंडित! पंचायत बुलाकर आज ही इसका फैसला होना चाहिए।
चन्दू : आज ही क्यों, अभी! पंचों में से हम चार तो यहीं हैं। पटवारी को और बुलवाए लेते हैं।
बैजनाथ : पंचों में से जब चार लोगों की राय एक है तो पटवारी के न आने से भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।
चौधरी : तुम ठीक कहते हो, पंडित!
पटेल : कान खोलकर सुन लो, मास्टर! आज शाम के पहले ही तुम्हें यह गांव छोड़ देना होगा।
मास्टर : मैं अपना काम पूरा किए बगैर गांव नहीं छोड़ूंगा।
चन्दू : पंचायत के हुक्म का अपमान करता है!
मास्टर : तुम लोग जो भी समझो, लेकिन…
पटेल : (चीखकर) क्या काम बाकी है अब तुम्हारा गांव में?
मास्टर : वही जो मैं कर रहा हूं।
चौधरी : वह काम अब कहीं और जाकर करो! सीधे से गांव से नहीं गए तो…
मास्टर : तो क्या?

चौधरी : तो हमें सख्ती वरतनी पड़ेगी !

चन्दू : हम तुम्हारा सामान उठाकर वाहर फेंक देंगे ।

मास्टर : (एकाएक चिल्लाकर) मेरा मन उजला है इसलिए तुम सब मिलकर मेरा सामान उठाकर गांव से वाहर फेंक दोगे । मुझे गांव से निकाल दोगे । पर अपने मन से तुम छुआछूत और अंधविश्वास के भूत को क्यों नहीं वाहर निकाल फेंकते ? तन से उजले होते हुए भी तुम सब मन के काले हो !

[पटेल क्रोध में आकर एक तमाचा मास्टर को मारता है ।]

पटेल : चुप रह !

मास्टर : (गाल पर हाथ रखकर) तुमने मुझे मारा, पटेल !

पटेल : हां, और अगर शाम तक तुमने गांव न छोड़ा तो सामान तो हम फेंकेंगे ही, तुम्हारी हड्डी-पसली भी एक कर देंगे ।

[एक-एक कर सब तेजी से वहां से चले जाते हैं ।]

रामू : (सिर उठाकर) तुम गांव छोड़कर चले जाओगे, मास्टरजी ?

मास्टर : हां वेटा !

रामू : फिर हमें कौन पढ़ाएगा ?

मास्टर : कोई दूसरा मास्टर आ जाएगा ।

रामू : तुम गांव छोड़कर मत जाओ, मास्टरजी !

मास्टर : इस गांव में मेरा कौन है, वेटा !

रामू : हम हैं न, मास्टरजी ! तुम हमारे घर चलकर रहो ।

मास्टर : रामू !

[मास्टर झुककर रामू को सीने से लगा लेता है । उसकी आंखें छलछला आती हैं । दृश्य-परिवर्तन के लिए प्रकाश

बुझता है।

[पुनः प्रकाश होने पर कुछ देर तक मंच पर सन्नाटा रहता है, फिर एक कोने से हाथ में सूटकेस उठाए मास्टर प्रवेश करता है। धीरे-धीरे चलता हुआ वह मंच के बीच तक पहुंचता है कि रामू के पुकारने की आवाज सुनाई पड़ती है।]

रामू : (आवाज) मास्टरजी ! ओ मास्टरजी !

[मास्टर रुक जाता है। सूटकेस चौंतरे पर रख वह पलटकर देखता है। हाथ में कपड़े की एक छोटी-सी पोटली लेकर रामू प्रवेश करता है।]

रामू : (हांफता हुआ) मैं तुम्हारे घर गया था, मास्टरजी ! पड़ोसी ने बताया कि तुम चले गए हो तो मैं भागा-भागा आपको ढूंढ़ने चला आया।

मास्टर : क्या बात है, बेटा ?

रामू : (पोटली मास्टर की ओर बढ़ाते हुए) मां ने यह दिया है, इसे रख लो।

मास्टर : क्या है इसमें ?

रामू : रोटी है। मां ने कहा, जाने कितनी दूर जा रहे होंगे। रास्ते में भूख लगे तो इसे खा लेना।

मास्टर : (पोटली लेते हुए) लाओ !

रामू : अब गांव कब आओगे, मास्टरजी ?

मास्टर : पढ़-लिखकर जब तू बड़ा आदमी बन जाएगा न, तब आऊंगा। (रामू का कंधा थपथपाकर) अच्छा, अब तू जा ! शाम होती जा रही है।

रामू : तुम जा कहां रहे हो, मास्टरजी ?

मास्टर : कुछ मालूम नहीं बेटा !

[मास्टर अपना सूटकेस उठाकर जाने को उद्यत होता है

कि तभी दौड़ता हुआ चौधरी प्रवेश करता है।]

चौधरी : मुझे माफ कर दो, मास्टर!

मास्टर : माफी काहे की! बल्कि मैंने अपने गलत कार्यों से आप गांववालों की भावनाओं को ठेस पहुंचायी है, मुझे माफ कर देना।

चौधरी : मुझे और शर्मिन्दा न करो! जल्दबाजी में हमने बिना सोचे-समझे वह सब कहा, मास्टर, हमें उसका अफसोस है…

मास्टर : अब अफसोस नहीं करना होगा, चौधरी! अब तो मैं जा रहा हूं। मैंने पंचायत की आज्ञा का अपमान नहीं किया।

चौधरी : अब तुम कहीं नहीं जाओगे, मास्टर!

मास्टर : (आश्चर्य से) क्या कह रहे हो तुम, चौधरी?

चौधरी : सच कह रहा हूं, मास्टर! मुन्नी की हालत सुबह इतनी खराब थी कि हमने उसके बचने की आशा ही छोड़ दी थी। पर तुमने जो दवा दी थी, उससे वह संभल गई।

मास्टर : सब भगवान की कृपा है, चौधरी! उस भगवान की, जो पंडित और तुम्हारी ही नहीं, सबका रख-वाला है, जिसकी नजर में सब बराबर हैं।

चौधरी : मैंने तो जब चौधराइन से सुना कि तुम दवा दे गए हो तो मैं उस पर बहुत आग-बबूला हुआ और दवा की गोलियों को नाली में फेंक देने को कहा। पर उसने मेरी बात नहीं मानी और तुम्हारे कहे मुता-बिक छिपाकर मुन्नी को दवा देती रही।

मास्टर : चौधराइन बड़ी समझदार है।

चौधरी : हां, उस दवा से ही मुन्नी की तबीयत संभल गई।

जब सारी बातें बताकर मैंने चौधराइन से कहा कि तुम्हें गांव से निकाल दिया है, तो उसने सारा घर रो-रोकर सिर पर उठा लिया। उसने कह दिया कि जब तक तुम वहां नहीं आओगे तब तक वह खाना नहीं खाएगी।

मास्टर : उसे समझाओ चौधरी, मैं वहां जाकर क्या करूंगा? जब इस गांव में रहना ही नहीं तो लोगों से नेह बढ़ाकर क्या फायदा? भगवान से यही प्रार्थना करूंगा कि मुन्नी को लंबी उम्र दे।

चौधरी : अकेली चौधराइन की बात होती तो मैं उसे समझा लेता, मास्टर! पर होश में आने के बाद मुन्नी भी तुम्हारे नाम की ही रट लगाए हुए है। तुम नहीं जाओगे, भैया, तो वह नहीं बचेगी। बार-बार कह रही है—मास्टर चाचा कहां है, उसे ले आओ।

मास्टर : तुम लोगों ने मुझे अजीब धर्म-संकट में डाल दिया है, चौधरी! एक ओर तो तुम पंचों की आज्ञा···

चौधरी : उसे मारो गोली, मास्टर, मैं कहता हूं अब तुम इस गांव से नहीं जाओगे।

मास्टर : लेकिन पंडित, साव और पटेल···

चौधरी : मैं इस पंचायत का सरपंच हूं, मैं उन्हें समझाऊंगा। मैं तुम्हारे लिए लड़ूंगा।

मास्टर : मेरे लिए लड़ने की जरूरत नहीं, चौधरी! लड़ना है तो हर वर्ग के लोगों के अधिकारों के लिए लड़ो, उनके कल्याण के लिए लड़ो।

चौधरी : तुम ठीक कहते हो, भैया!

मास्टर : यह मेरी अपनी बात नहीं—हमारे देश के बड़े-बड़े महात्मा भी यही कह गए हैं। हमारे राष्ट्रपिता

महात्मा गांधी का वह भजन याद नहीं क्या—
'भक्त जनन तो तेणे कहिये पीर-पराई जानी रे।'
[चौधरी आगे बढ़कर मास्टर का सूटकेस उठा लेता है।]

मास्टर : भेद-भाव भूलकर जब सब कंधे से कंधा मिलाकर, एक होकर रहेंगे तभी हमारे गांव प्रगति कर सकते हैं, हमारा समाज आगे बढ़ सकता है, हमारे देश का कल्याण हो सकता है।

चौधरी : अब देर न करो, चलो भैया !

मास्टर : (कपड़े की पोटली रामू को लौटाते हुए) ले रामू, इसे ले जाकर अपनी मां को दे देना। अब इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

चौधरी : क्या है इसमें ?

मास्टर : मेरे खाने के लिए रामू की मां ने रोटियां भेजी थीं।

चौधरी : तो उसे वापस क्यों लौटा रहे हो, रख लो। घर पर दोनों मिल कर खाएंगे।

मास्टर : लेकिन रामू तो हरिजन··· .

चौधरी : (बात काटकर) मैं जानता हूं। पर हैं तो वे भी इन्सान ही, मास्टर, तुम्हीं तो कहते थे···

मास्टर : (हर्षातिरेक से) चौधरी !

[मास्टर चौधरी के गले से लग जाता है। उसकी आंखों से आंसू छलक आते हैं। परदा गिरता है।]

तन उजला मन काला

पात्र

⊙

सेठ भगवानदास	नगर का एक सम्पन्न व्यक्ति
प्रकाशचन्द्र	स्कूल—मास्टर
विजय	सेठ भगवानदास का पुत्र
सुरेश	एक गरीब छात्र
पलटू	सेठजी का मुंहफट नौकर
मिस्टर खन्ना	एक लालची व्यक्ति
पुलिस इंस्पेक्टर	पुलिस इंस्पेक्टर

स्थान

⊙

एक बड़े नगर में स्थित
सेठ भगवानदास के भवन की बैठक।

काल

○

सन् १९७२ जनवरी

[सेठ भगवानदास अपने सुसज्जित बैठक की गद्देदार कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे हैं। उनकी अवस्था ५०-५५ के लगभग है। माथे पर चंदन का टीका, बड़ी-बड़ी मूछें व सिर के बाल अधपके। शरीर पर कीमती धोती व कुर्त्ता। पैरों में पंप शू! सिर पर काली टोपी। काल-बेल घनघना कर बज उठती है।]

भगवानदास : (पुकारकर) पलटू! अबे ओ पलटू!

पलटू : (अन्दर से) आया सरकार!

[पलटू का भागते हुए प्रवेश। अवस्था १४-१५ के लगभग। बदन पर मैली निकर और चार खाने की बुशर्ट। वह सेठजी के करीब खड़ा होकर एकटक उन्हें ताकता है।]

भगवानदास : अबे खड़ा-खड़ा मेरे मुंह की ओर क्या ताक रहा है?

पलटू : आप ही ने तो बुलाया था।

भगवानदास : तो क्या अपना चेहरा देखने को तुझे बुलाया था?

पलटू : अब क्या मालूम! (अन्दर जाने लगता है।)

भगवानदास : अब जा कहां रहा है तू?

पलटू : (रुककर) जी! अन्दर जा रहा हूं, काम करने।

भगवानदास : अबे, उल्लू के पट्ठे, तू बहरा है क्या?

पलटू : बहरा? (सिर हिलाकर) नहीं तो।

भगवानदास : इतनी देर तक काल-बेल बजती रही और तुझे

कुछ सुनाई नहीं पड़ा ?

पलटू : ओह, वह काल-बेल की घंटी बजी थी ! (हंसकर) मैंने तो समझा, टेलीफोन की घंटी बज रही है।

भगवानदास : अब बहस ही करता रहेगा या जाकर देखेगा भी कि कौन है बाहर।

पलटू : अभी देखता हूं। (बाहर जाता है।)

भगवानदास : अच्छे सिर फिरे नौकर से पाला पड़ा है।

[पलटू प्रवेश करता है।]

पलटू : वो स्कूल के मास्टर आए हैं। वही, जो विजू भैया को ट्यूशन पढ़ाते हैं।

भगवानदास : जा, अन्दर बुला ला।

[पलटू बाहर चला जाता है और क्षण-भर बाद मास्टर प्रकाशचन्द्र के साथ लौटता है। प्रकाशचन्द्र इकहरे बदन का २५-३० वर्षीय युवक है। शरीर पर काटन की सस्ती पेंट तथा वैसी ही कमीज, पैरों पर चप्पल और आंखों पर ऐनक]

प्रकाशचन्द्र : (हाथ जोड़कर) नमस्कार सेठ जी !

भगवानदास : नमस्कार। आओ, बैठो।

[पास की एक कुर्सी पर प्रकाश बैठ जाता है।]

पलटू : अब मैं अन्दर जाऊं ?

भगवानदास : (झुंझलाकर) हां-हां, जाकर मर अन्दर।

[अखबार सामने की मेज पर रख देता है।]

पलटू : (जाते-जाते) आपके कहने से ही मैं थोड़ा मर जाऊंगा। इतनी आसानी से मैं मरने वाला नहीं हूं। (अन्दर चला जाता है।)

प्रकाशचन्द्र : स्कूल में ही आपका संदेश मुझे मिल गया था।

स्कूल छूटते ही चला आ रहा हूं। सुबह मैं पढ़ाने आया था, पर विजय घर पर था ही नहीं, आज स्कूल भी नहीं आया। क्या बात है? कुछ तबीयत वगैरह...

भगवानदास : तबीयत तो उसकी ठीक है।

प्रकाशचन्द्र : फिर?

भगवानदास : उसे मैंने ही स्कूल नहीं भेजा था।

प्रकाशचन्द्र : ओह! कोई जरूरी काम पड़ गया होगा।

भगवानदास : कोई जरूरी काम भी नहीं था।

प्रकाशचन्द्र : जी? तब फिर...

भगवानदास : हां, उसे स्कूल भेजने से पहले मैंने एक बार तुमसे बातें करना जरूरी समझा।

प्रकाशचन्द्र : फरमाइए?

भगवानदास : आप कितने माह से विजू को ट्यूशन पढ़ा रहे हैं?

प्रकाशचन्द्र : करीब चार माह से।

भगवानदास : आपने उसकी छमाही परीक्षा का नतीजा देखा है?

प्रकाशचन्द्र : जी हां, देखा है।

भगवानदास : क्या देखा है?

प्रकाशचन्द्र : यही कि वह चार विषयों में फेल है।

भगवानदास : कुल छह विषयों में से चार विषयों में वह फेल है। फिर आपको ट्यूशन पर लगाने का मतलब क्या हुआ?

प्रकाशचन्द्र : मुझे क्या मालूम आपने किस मतलब से मुझे ट्यूशन लगाया था! देखिए सेठजी, एक बात आपको स्पष्ट कर दूं कि मैंने विजय को ट्यूशन

पढ़ाना स्वीकार किया था, उसके पास होने की कोई गारन्टी नहीं दी थी।

भगवानदास : (कठोर स्वर में) फिर सौ रुपए माहवार क्या मैं ऐसे ही फेंक रहा हूं ?

प्रकाशचन्द्र : आप सौ क्या, पांच सौ रुपये फेंकिए, अगर विजय खुद मेहनत नही करेगा तो नतीजा यही होगा। मैं उसकी कठिनाई पढ़ाई में हल कर सकता हूं, पर उसे स्वयं भी तो पढ़ना चाहिए।

भगवानदास : तुम उसके क्लास टीचर हो, तुम चाहो तो…

प्रकाशचन्द्र : (बीच ही में) हा, मैं चाहूं तो पेपर आउट कर सकता हू, उसे नकल मारने की छूट दे सकता हूं, यही न ? और शायद इसी मतलब से आपने उसके क्लास टीचर को ही यानी मुझे ट्यूशन पर लगाया था। अपनी आर्थिक दुर्दशा से त्रस्त होकर कुछ मास्टर भले ही ऐसा करें सेठजी, पर मैं उनमें से नही जो कुछ पैसों के लालच में अपना कर्त्तव्य भूल जाऊ, अपना ईमान बेच दूं।

भगवानदास : ठीक है, तुम अपना हिसाब कर लो, कल से मैं दूसरा मास्टर देख लूंगा।

प्रकाशचन्द्र : वह आपके बिना कहे भी मैं समझ गया था। (उठकर जाने को उद्यत होता है।)

भगवानदास : ठहरो, जा कहा रहे हो ?

प्रकाशचन्द्र : क्या करूंगा अब यहा बैठकर। बात तो खत्म हो गई।

भगवानदास : खत्म नही, बल्कि अब शुरू होने वाली है। जो बात कहने के लिए मैंने तुम्हे बुलवाया था वह अभी शुरू हो कहा हुई ?

प्रकाशचन्द : हां, कहिए, क्यों बुलवाया था मुझे ?

भगवानदास : कल स्कूल में तुमने विजय को कुछ सजा दी थी !

प्रकाशचन्द : जी हां, दी थी।

भगवानदास : क्यों ?'

प्रकाशचन्द : क्योंकि उसने स्कूल का अनुशासन भंग किया था। उसने एक गरीब छात्र की कमीज पर पीछे बैठकर पेन से स्याही छिड़कने की शरारत की थी और पूछने पर झूठ बोला था।

भगवानदास : पर विजू ने तो मुझे बताया कि उसने स्याही नहीं छिड़की थी।

प्रकाशचन्द्र : उसने आपसे झूठ कहा है ! क्योंकि उसे ऐसा करते एक दूसरे छात्र सुरेश ने देखा था। उसी के बताने पर···

भगवानदास : तुमने उसे सजा दे दी ! बिना यह जाने कि सुरेश भी झूठ बोल सकता है।

प्रकाशचन्द्र : सुरेश कभी झूठ नहीं बोलता, वह कक्षा का सबसे अच्छा छात्र है।

भगवानदास : पर विजय के मामले में वह झूठ बोल सकता है, क्योंकि विजय से उसकी बनती नहीं है।

प्रकाशचन्द्र : मैंने सारे छात्रों की जांच-पड़ताल के बाद ही विजय को दोषी बताया था और कार्रवाई की थी। अब आप जो समझना चाहें, समझ सकते हैं।

पलटू : (प्रवेश करके) देखिये, आपको देखने को [illegible] [illegible] कर रहे हैं।

भगवानदास : चलो, अच्छा है। ठीक है मास्टर, मैं तुम्हारे इस व्यवहार के बारे में प्रिंसिपल से बात करूंगा।

[तेजी से अन्दर चले जाते हैं।]

प्रकाशचन्द्र : आप शौक से बात कर सकते है।
[प्रकाशचंद्र जाने को उद्यत होता है कि बाहरी दरवाजे से विजय अन्दर आता है। १५-१६ वर्षीय इकहरे बदन का सुन्दर युवक। वेश-भूषा अति आधुनिक।]

विजय : ओह, सर, आप ! इस समय, यहां ?

प्रकाशचन्द्र : (किंचित् हंसकर) हां, कुछ जरूरी बातें करने के लिए तुम्हारे पिताजी ने बुलवाया था, इसलिए स्कूल से छूटकर सीधा यहां आ गया।

विजय : सर, आज सुबह जब आप पढ़ाने आये थे, तब मैं जरा बाहर चला गया था, लेकिन कल सुबह···

प्रकाशचन्द्र : कल से मैं नहीं आऊंगा।

विजय : क्यों सर ?

प्रकाशचन्द्र : तुम्हारे पिताजी इसके बारे में बेहतर बता सकेंगे। लेकिन विजय, तुम्हें कोई भी पढ़ाए या तुम कहीं भी रहो, जीवन में इस कहावत को कभी न भूलना—'गॉड हेल्प्स दोज़ हू हेल्प देमसेल्व्स' अर्थात् ईश्वर उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद खुद करते हैं। इससे तुम कभी जीवन में असफल नहीं होगे।

विजय : याद रखूंगा, सर !

प्रकाशचन्द्र : और जीवन में सच बोलने की कोशिश करना। कितनी भी कठिनाईयां क्यों न आ पड़ें, सच का दामन नहीं छोड़ना। आखिर विजय सच की ही होती है।

विजय : यस सर !
[प्रकाशचन्द्र विजय का कन्धा थपथपाता है।]

प्रकाशचन्द्र : अच्छा, मैं चलता हूं। (प्रकाशचन्द्र चला जाता है।)

विजय : (बुदबुदाते हुए) गॉड हेल्प्स दोज़ हू हेल्प देम-सेल्व्स अर्थात्...ठीक है, मैं इसे डायरी में लिख लेता हूं।

[जेब से एक डायरी और पैन निकालकर कुर्सी पर बैठकर लिखता है। इसी समय बाहर से आवाज़ आती है सुरेश की।]

सुरेश : (बाहर से) विजय! ओ विजय!

विजय : कौन है?

सुरेश : (बाहर से) मैं हूं—सुरेश।

[विजय बाहर जाता है और क्षण भर बाद सुरेश के साथ लौटता है। सुरेश उसका हम उम्र है, इकहरा बदन, शरीर पर खाकी पतलून, सफेद कमीज, व पैरों में चप्पल पहने है।]

विजय : कहो, आज कैसे अचानक आना हुआ?

सुरेश : एक जरूरी काम से आया हूं। तुम्हारे पिताजी कहां हैं?

विजय : अन्दर हैं। उन्हीं से काम है क्या?

सुरेश : हां।

विजय : तुम बैठो, मैं भेजता हूं।

[सुरेश एक कुर्सी पर बैठ जाता है। विजय अन्दर जाता है।]

[कुछ देर बाद अन्दर से सेठ भगवानदास प्रवेश करते हैं। सुरेश खड़े होकर उन्हें नमस्कार करता है।]

भगवानदास : हां, कहो। कैसे आना हुआ?

सुरेश : मैं मार्डन स्कूल के छात्र-परिषद् का सेक्रेटरी हूं। हम छात्र-परिषद् के लड़के शरणार्थियों के लिए

कुछ चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं। मैं आपके पास इसलिए आया था कि आप भी कुछ···

भगवानदास : मैं समझ गया। तो पढ़ना-लिखना छोड़कर चन्दा वसूल करने का काम कर रहे हो? अरे, शरणार्थी आते हैं तो आने दो, उससे तुम्हें क्यों सरदर्द है? तुम लोग अपनी पढ़ाई-लिखाई करो, खाओ-पिओ, मस्त रहो। वह गवर्नमेंट का सरदर्द है, गवर्नमेंट को ही उससे निपटने दो।

सुरेश : पर इस देश के नागरिक होने के कारण इस बड़ी जिम्मेदारी के वक्त हमें भी तो सरकार की मदद करनी चाहिए।

भगवानदास : तो मदद करने से तुम्हें रोका किसने है?

सुरेश : जी, इसलिए हम घर-घर घूमकर चंदा···

भगवानदास : अभी तो तुमने अपनी मदद की बात की थी, फिर दूसरों से चंदा क्यों मांग रहे हो?

[सेठ भगवानदास जेब से सुनहरा सिगरेटकेस निकाल कर एक सिगरेट सुलगाते हैं और सिगरेट केस मेज पर रख देते हैं।]

सुरेश : लेकिन हम जिनसे चन्दा मांग रहे हैं, वे भी तो इस देश के नागरिक हैं। हम सब आपस के सहयोग से ही इस समस्या को हल कर सकते हैं।

भगवानदास : भाई, मुझे तो माफ करो। इस बावत मैं पहले कई संस्थाओं को चन्दा दे चुका हूं। अब और मजबूर हूं।

सुरेश : मैं बड़ी उम्मीद से आया था आपके पास···

भगवानदास : आइ एम सॉरी।

सुरेश : (निराश-सा) अच्छी बात है सेठजी! नमस्कार।

[सुरेश चला जाता है ।]

भगवानदास : (बड़बड़ाते हुए) जिसे देखो, उसे चन्दा ही चाहिए। वंगला देश पर विपत्ति क्या आई, चन्दा वसूल करने की होड़-सी लग गई है । जिसे देखो, वही मुंह उठाए चन्दा वसूल करने चला आ रहा है । अच्छा धन्धा वना लिया है लोगों ने !

[विजय का प्रवेश ।]

विजय : सुरेश क्या कह रहा था, वावूजी ?

भगवानदास : कौन सुरेश ?

विजय : वही लड़का, जो अभी आया था । मेरे साथ ही तो पढ़ता है ।

भगवानदास : अच्छा, यही सुरेश है क्या ?

विजय : हां । क्या कह रहा था ?

भगवानदास : कहेगा क्या, वंगला देश के शरणार्थियों के लिए चंदा मांग रहा था ।

विजय : आपने कितना दिया ?

भगवानदास : एक पैसा भी नहीं ।

विजय : क्यों ?

भगवानदास : कितनों को इस तरह चंदा दूं ! और इस लड़के का क्या भरोसा, चंदा वसूल करके खुद ही हजम कर जाए…

विजय : नहीं वावूजी, सुरेश ऐसा नहीं !

भगवानदास : (आश्चर्य से) वाह वेटा । कल तक तो तू ही उसकी वुराई कर रहा था और आज…

[इसी समय वाहर से काल-वेल वजती है ।]

भगवानदास : देख तो वेटा, कौन है वाहर ?

[विजय वाहर आता है और पलभर वाद मिस्टर खन्ना

के साथ वापस आता है। मिस्टर खन्ना इकहरे बदन के ४०-४५ वर्ष का अधेड़ व्यक्ति है। शरीर पर एक पुराना सूट, जूते, आंखों पर ऐनक व हाथ में पोर्टफोलियो।]

भगवानदास : (प्रसन्न होकर) आओ-आओ, खन्ना! बैठो। कहो, आज इधर कैसे भूल पड़े?

मि० खन्ना : इधर से गुजर रहा था तो सोचा तुमसे मिलता चलूं। (बैठकर) महिला क्लब के फैशनशो के लिए तुमने एक हजार रुपए चंदे का वादा किया था न! सोचा, लगे हाथ उसे भी वसूलता चलूं!

भगवानदास : हां-हां, क्यों नहीं। तो चैक दे दूं? (विजय अंदर चला जाता है।)

मि० खन्ना : कैश दे देते तो बढ़िया रहता।

भगवानदास : देना तो मुझे है ही, चैक ले जाओ या कैश। (रुककर) तुम बैठो, मैं पैसे ले आता हूं।

[खन्ना क्षण भर तक अखबार इधर-उधर पलटकर देखता है। भगवानदास अंदर चला जाता है। तभी एकाएक खन्ना की नजर सिगरेटकेस पर पड़ती है। वह सतर्कता से चारों ओर देखता है। फिर सिगरेट केस उठाकर जेब में रख लेता है।

पल भर बाद सेठ भगवानदास का प्रवेश। नोटों का बंडल वे खन्ना को देते हैं।]

भगवानदास : गिन लो, पूरे हजार हैं।

मि० खन्ना : गिनने की क्या जरूरत, तुम कोई कम थोड़े ही दोगे?

[खन्ना नोट जेब में रख लेता है और उठ खड़ा होता है।]

भगवानदास : अरे, खड़े क्यों हो गए, चाय-वाय नहीं पियोगे ?

मि० खन्ना : नहीं, अभी जरा जल्दी में हूं। बहुत सारा इन्तजाम अभी करना है। तुम्हें तारीख और समय तो याद है न ? परसों शाम सात बजे।

भगवानदास : हां-हां, याद है।

मि० खन्ना : देखो, क्लब की मिस ब्यूटी क्वीन प्रतियोगिता में मात्र तुम्हीं पुरुष जज हो, बाकी तो सब औरतें हैं। समय से आध घंटे पहले ही पहुंच जाना।

भगवानदास : बिलकुल पहुंच जाऊंगा।

मि० खन्ना : अच्छा, अब मैं चलूं !

[खन्ना भगवानदास से हाथ मिलाकर बाहर निकल जाता है।]

भगवानदास : पलटू ! अबे ओ पलटाराम !

[पलटू प्रवेश करता है।]

भगवानदास : चाय-वाय पिलाने का इरादा है या नहीं ?

पलटू : इरादा तो है, पर दूध फट गया है।

भगवानदास : कैसे फट गया ?

पलटू : मुझे क्या मालूम ? कल ग्वाला आएगा तो पूछूंगा।

भगवानदास : चल, दफ़ा हो जा, मेरी आंखों के सामने से।

पलटू : वाह, कसूर ग्वाले का और आप मेरे ऊपर दादागिरी झाड़ रहे हो।

भगवानदास : अब जाता भी है या नहीं ?

पलटू : जा तो रहा हूं। (अंदर चला जाता है।)

[भगवानदास सिगरेटकेस के लिए हाथ फैलाकर मेज पर टटोलते हैं और न पाकर अखबार उठाकर देखते हैं, फिर इधर-उधर ढूंढ़ते हैं।]

भगवानदास : पलटू ! अबे ओ पलटू !

पलटू : (प्रवेश करके) अब क्या हो गया ?

भगवानदास : मेरा सिगरेटकेस कहां गया ?

पलटू : मुझे क्या मालूम ? मैं तो सिगरेट नहीं पीता, देशी उद्योग को बढ़ावा देने के लिए बीड़ी पीता हूं …

भगवानदास : अबे जो मैं पूछता हूं, सीधी तरह से उसका जवाब दे !

पलटू : इंडाइरेक्ट जवाब दे तो दिया, मैं नहीं जानता।

भगवानदास : जा, अंदर से जरा विजय को तो भेज !

[पलटू अंदर जाता है। पल भर बाद विजय का प्रवेश।]

भगवानदास : मैंने अपना सिगरेट केश यहां रखा था, कहां गया ?

विजय : मुझे क्या मालूम ?

भगवानदास : मालूम है तुझे, वह सोने का था, बड़ा कीमती था।

विजय : कहां रखा था आपने ?

भगवानदास : इसी मेज पर रखा था !

विजय : फिर यहां से कहां गायब हो गया ?

भगवानदास : कहीं सुरेश ने तो उसे नहीं उड़ा लिया ! क्योंकि वही एक बाहरी आदमी यहां आया था।

विजय : वही क्यों, मिस्टर खन्ना भी तो आए थे !

भगवानदास : कैसी पागलों जैसी बात करता है तू। मिस्टर खन्ना इतने बड़े आदमी हैं, मेरे दोस्त हैं वे। इतनी मामूली-सी चीज कैसे उठा ले जा सकते हैं। हो न हो, यह उस लड़के सुरेश की है

कारस्तानी है।

विजय : लेकिन मुझे यकीन है, बाबूजी, सुरेश कभी चोरी नहीं कर सकता।

भगवानदास : खैर, अभी दूध का दूध पानी का पानी हुआ जाता है। मैं पुलिस को फोन करता हूं।

[भगवानदास टेलीफोन के करीब जाकर रिसीवर उठाते हैं और नंबर डायल करते हैं। दृश्य-परिवर्तन के संकेत में प्रकाश बुझता है।

फिर प्रकाश होने पर सेठ भगवानदास, विजय, प्रकाशचन्द्र, सुरेश व पुलिस इन्सपेक्टर मंच पर बातें करते दिखाई पड़ते हैं।]

इंस्पेक्टर : हां, तो सुरेश, तुम्हें अपनी सफाई में क्या कहना है?

सुरेश : मैं आपसे पहले भी अर्ज कर चुका हूं, इंस्पेक्टर, मैं उस सिगरेटकेस के बारे में कुछ भी नहीं जानता।

इंस्पेक्टर : पर सेठजी को तो तुम पर ही शक है।

सुरेश : इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं? मैं इतना जानता हूं कि जब मैं चंदा मांगने यहां आया था तो सेठजी इसी मेज के सामने बैठे थे और मैं यहां खड़ा था। वे अपनी जगह से एक मिनट के लिए भी नहीं हिले, फिर उनके सामने भला मैं सिगरेटकेस कैसे उठा सकता था? उनके सामने ही मैं उठकर चला भी गया था।

इंस्पेक्टर : क्या यह ठीक कह रहा है सेठजी?

भगवानदास : हाथ की सफाई करने वाले तो हजारों लोगों की उपस्थिति में भी माल उड़ा ले जाते हैं, फिर मैं

तो अकेला था।

प्रकाशचन्द्र : हाथ की सफाई सुरेश का पेशा नहीं है, सेठजी !

भगवानदास : तुम बीच में दलाली क्यों कर रहे हो, मास्टर! क्या चोरी के माल में तुम्हारा भी हिस्सा है?

प्रकाशचन्द्र : मैं नहीं जानता था कि तन के उजले होते हुए भी आप मन के इतने काले हैं।

इंस्पेक्टर : हां, तो सेठजी, सुरेश के अलावा और कोई बाहरी आदमी यहां नहीं आया था?

भगवानदास : जी नहीं।

विजय : मिस्टर खन्ना तो आए थे, बाबूजी!

भगवानदास : हां, मेरे दोस्त मिस्टर खन्ना दो मिनट के लिए आए जरूर थे, पर वे तो स्वयं सम्पन्न [illegible] हैं। वे भला यह काम कैसे कर सकते हैं!

इंस्पेक्टर : हूं। सुरेश, मैं तुम्हें हिरासत में लेता हूं। [illegible] तक मामले की छानबीन नहीं हो [illegible] पुलिस की हिरासत में रहना पड़ेगा।

प्रकाशचन्द्र : मैं इसकी जमानत देने को तैयार हूं [illegible]

इंस्पेक्टर : इसके लिए आपको थाने चलकर [illegible]

प्रकाशचन्द्र : चलिए, मैं चलता हूं।

[इसी समय एक कांस्टेबल [illegible] से इंस्पेक्टर को बुलाकर [illegible] बाद इंसपेक्टर लौटता है। [illegible] वह सेठ भगवानदास को [illegible]

इंस्पेक्टर : यही आपका [illegible]

भगवानदास : (चौंककर) हां, [illegible]

इंस्पेक्टर : अभी-अभी [illegible] इसे एक [illegible]

जानते हैं, जेवकतरे के पास यह कहां से आया ?

भगवानदास : कहां से आया ?

इंस्पेक्टर : जेवकतरे ने खन्ना नामक एक व्यक्ति की जेब से इसे निकाला था ?

भगवानदास : लेकिन खन्ना···यह कैसे···

प्रकाशचन्द्र : मैं जानता था, इंस्पेक्टर ! सच्चाई की आखिर जीत होगी। सच्चों को मदद भगवान भी करते हैं।

इंस्पेक्टर : सच्चाई की जांच किए वगैर आपने खामखा इस निर्दोष लड़के को परेशान किया। आप जैसे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति···

प्रकाशचन्द्र : चमकने वाली हर चीज हीरा नहीं होती इंस्पेक्टर ! ऊपर से उजले दिखने वाले हर इन्सान का दिल साफ नहीं होता।

इंस्पेक्टर : तुम जा सकते हो, सुरेश ! मुझे अफसोस है कि झूठी रिपोर्ट के कारण तुम्हें खामखा तकलीफ उठानी पड़ी।

सुरेश : तकलीफ की कोई वात नहीं, इंस्पेक्टर ! मुझे तो खुशी है कि फैसला वहुत जल्द हो गया, वरना मेरे माता-पिता को ज्यादा तकलीफ होती। वे मेरे वारे में न जाने क्या-क्या सोचते !

प्रकाशचन्द्र : आओ, सुरेश !

सुरेश : अच्छा, नमस्ते इंस्पेक्टर साहव ! नमस्कार, सेठजी !

[हाथ जोड़कर अभिवादन करने के बाद प्रकाशचन्द्र के पीछे सुरेश चला जाता है। जड़वत् सेठ भगवानदास उसे जाता देखते हैं। परदा गिरता है।]

००

बुराई का बदला भलाई

पात्र

⊙

वासुदेव	प्रवकाश प्राप्त मिलेट्री का सिपाही
राजन	उसका पुत्र
काले खां	एक शातिर चोर

स्थान

⊙

एक साधारण मकान की
छोटी-सी बैठक

काल

⊙

वर्तमान

[एक मकान की बिल्कुल साधारण-सी बैठक। फर्नीचर के नाम पर
वल एक पुरानी मेज़ और दो पुरानी कुर्सियां रखी हुई हैं।
५०-५५ वर्ष के वृद्ध वासुदेव एक कुर्सी पर बैठे सामने मेज पर
रामायण फैलाए पढ़ रहे हैं। मेज़ की बगल में उनकी दो बैसाखियां
टिकी हुई हैं।
वासुदेव के बदन पर एक बनियान और एक धोती है। एक पांव
उनका घुटने से कटा हुआ है। कमरे के कोने की ओर दीवार में कील
पर कुछ कपड़े टंगे हुए हैं।]

वासुदेव : (पाठ करते हुए) आगे चले बहुरि रघुराया,
ऋष्यमूक पर्वत नियराया।

[राजन प्रवेश करता है। अवस्था १२-१३ वर्ष। शरीर
पर निकर-बुशर्ट है।]

वासुदेव : (सिर उठाकर) खाना खा लिया, बेटा?

राजन : हां। तुम्हारा खाना ढककर रख दिया है, बापू!

वासुदेव : आओ, पहले तुझे पढ़ा लूं, बाद में खा लूंगा। जा,
अपनी पुस्तक ले आ!

[एक कोने से राजन अपने स्कूल का थैला उठाकर लाता
है और कुर्सी पर बैठकर उसमें से कुछ पुस्तकें निकालकर
मेज पर रखता है।]

राजन : एक बात तो बताओ, बापू!

वासुदेव : पूछो बेटा! (रामायण बंद करके एक ओर रख देता है

राजन : शंभू कहता था, 'तुलसीदासजी अंग्रेजी के भी व

वड़े विद्वान थे।

वासुदेव : (हंसकर) अच्छा!

राजन : हां बापू! वह कहता था कि तुलसीदास ने अपने पदों में अंग्रेजी भी घुसेड़ दी है। जैसे अभी तुमने पढ़ा न—ऋष्यमूक पर्वत नियराया। वह कहता है 'नियर' अंग्रेजी शब्द है। नियर आया यानी पास आया। यही मतलब होता है न, बापू?

वासुदेव : हां-हां, बड़ा होशियार है शंभू!

राजन : वैसे तो बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें करता है वह, पर परीक्षा में हमेशा फेल हो जाता है।

वासुदेव : इसीलिए तो कहा कि शंभू बड़ा ज्ञानी है। अच्छा चल, पुस्तक खोल! कल कौन-सा पाठ पढा था?

राजन : (पुस्तक खोलते हुए) रहीम के दोहे।

वासुदेव : हां, कौन-सा पद पढ़ा रहा था, पढ!

राजन : (पढ़ते हुए) जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल को फूल है, वाको है तिरशूल!

वासुदेव : हां, इसका अर्थ होता है—जो तेरे लिए कांटा बोता है, उसके लिए तू फूल पैदा कर। वह फूल तेरे लिए तो फूल ही होगा, पर उसके लिए वह त्रिशूल से भी तेज होगा। भावार्थ यह है कि अगर कोई तुझसे बुराई करे तो तू उसके साथ बुराई न कर, बल्कि भलाई किए जा! तेरी यह भलाई उस पर ज्यादा असर डालेगी।

[इसी समय बाहर से कालेखां की आवाज सुनाई पड़ती है।]

कालेखां : (बाहर से) बाबूजी, ओ बाबूजी!

वासुदेव : कोई आवाज दे रहा है शायद। देखना तो, बेटा!

[राजन उठकर एक ओर जाता है और पल भर बाद ही लौटता है। उसके पीछे ३०-३५ वर्षीय कालेखां है। रूखे बाल, बढ़ी दाढ़ी, मैली पतलून व चारखाने की बुशर्ट। चेहरे पर कठोर भाव हैं।]

वासुदेव : तुम्ही बाहर से आवाज दे रहे थे ?

कालेखां : हां, बाबूजी !

वासुदेव : क्या बात है ?

कालेखां : दो दिन से भूखा हूं, बाबूजी, अगर कुछ खाने को दे देते तो बड़ी दया होती।

राजन : पर खाना है कहां ?

कालेखां : रहम करो, बाबूजी ! भूख से मर रहा हूं।

वासुदेव : राजन, जो खाना ढककर रखा है, लाकर इसे दे दो।

राजन : फिर तुम क्या खाओगे बापू ?

वासुदेव : मेरे पेट में आज दर्द है, मैं नहीं खा सकूंगा। जा, थाली ले आ बेटा !

[राजन अन्दर चला जाता है।]

कालेखां : आप यहां अकेले रहते हैं, बाबूजी ?

वासुदेव : नहीं, मेरा बेटा राजन भी मेरे साथ रहता है।

[राजन एक हाथ में थाली और दूसरे हाथ में गिल लेकर आता है और नीचे फर्श पर रख देता है।]

वासुदेव : अरे, नीचे क्यों रख दिया ? मेज पर रखना थ

कालेखां : (थाली के पास बैठते हुए) यहीं ठीक है, बाबूजी

वासुदेव : मेरे यहां सिर्फ यह दाल-रोटी ही है। अगर तुम्हारी भूख मिट सके तो ठीक है, वरना...

कालेखां : (बीच ही में) मेरे लिए इतना काफी है, बाबू

[कालेखां रोटी तोड़ता है और दाल में डुबा लगता है। राजन कुर्सी पर बैठकर पुस्तक

बीच-बीच में कनखियों से वह कालेखां को देख लेता है।]

वासुदेव : कहां रहते हो ?

कालेखां : कोई ठिकाना नहीं है। जहां रात हो जाती है, वहीं सो जाता हूं।

वासुदेव : इस शहर में नए हो ?

कालेखां : जी हां, बाबूजी !

वासुदेव : क्या काम करते हो ?

कालेखां : पहले ठेले में सब्जी बेचा करता था, बाबूजी ! एक बार शहर में दंगा हो गया तो कर्फ्यू में सब्जी बेचने न जा सका और सब सब्जी सड़ गई। धंधा शुरू करने के लिए फिर पैसे कौन देता ! काम की तलाश में इस शहर में आया, पर कोई काम नहीं मिला। रात को फुटपाथ व पार्क पर सोता हूं तो पुलिस-वाले तंग करते हैं। यह सोचकर आया था कि बड़ा शहर है, कोई न कोई काम मिल जाएगा। पर अब सोचता हूं, बेकार ही मैं यहां आ फंसा।

वासुदेव : घबराओ नहीं, रामचन्द्रजी सब ठीक कर देंगे।

राजन : बापू, अब पढ़ाओगे नहीं !

वासुदेव : नहीं, तू जाकर सो जा अब।

[राजन पुस्तकें थैले में रख देता है। फिर थैला कमरे के कोने में यथास्थान रखकर वह अन्दर चला जाता है।]

कालेखां : (सहसा) बाबूजी, आपका पैर ?

वासुदेव : (हंसकर) यह फौज की निशानी है। मोर्चे पर गया था, वहीं गोली लग गई थी। जख्म बहुत बढ़ गया, तो पैर कटवा देना पड़ा।

कालेखां : अब आप क्या करते हैं, बाबूजी ?

वासुदेव : कुछ नहीं, सिर्फ भगवान का भजन। सरकार ने यह

क्वार्टर रहने को दिया है और सौ रुपए माहवार
पेंशन देती है। हम दोनों का गुजारा हो जाता है।

[कालेखां खाना खाकर थाली में हाथ धोता है।]

कालेखां : बाबूजी, नल बता दीजिए, मैं थाली धो देता हूं।

बासुदेव : थाली वैसे ही रहने दो, सुबह राजन धो लेगा।

कालेखां : (उठकर) अब चलूं, बाबूजी! आपको तकलीफ हुई...

बासुदेव : तुम्हारा तो कोई ठिकाना भी नहीं, इतनी रात को
जाओगे कहां! यहीं सो जाओ, सुबह चले जाना।

कालेखां : लेकिन बाबूजी...

बासुदेव : घबराओ नहीं, दरी और चादर मैं दिए देता हूं।

[बैसाखी के सहारे बासुदेव अन्दर जाता है और पल भर
बाद एक दरी व चादर लेकर लौटता है।]

बासुदेव : लो, यह दरी बिछा लो और चादर ओढ़ लेना।

[बासुदेव से कालेखां दरी ले लेता है। खाने की थाली
उठाकर एक ओर रख देता है और दरी बिछाता है।]

बासुदेव : मैं दरवाजा अन्दर से बंद कर लेता हूं।

[बासुदेव बैसाखी के सहारे एक ओर जाता है। क्षण भ
बाद पुनः मंच पर आता है।]

बासुदेव : लो, आराम से सो जाओ! मैं भी सोने जा रहा

[बासुदेव दूसरी ओर चला जाता है। कालेखां दरी
लेट जाता है।]

[दृश्य-परिवर्तन के लिए मंच पर का प्रकाश बुझता
पल भर बाद जब मंच पर प्रकाश होता है तो वह
धुंधला रहता है। संकेत काफी रात बीत जाने का
पर कालेखां लेटा हुआ है। दूसरे पल वह गर्दन
एक बार चारों ओर सावधानी से देखता है।
उठकर सीधा खड़ा हो जाता है। जेब से टॉर्च

क्रमशः कमरे के हर कोने को देखता है। फिर टॉर्च का प्रकाश कील में टंगे वासुदेव के कुर्ते पर जाकर स्थिर हो जाता है। वह दबे पांव उस ओर बढ़ता है।
कुर्ते की जेब में वह ज्यों ही हाथ डालता है कि 'खट' की आवाज से मंच पर पूर्ण प्रकाश हो जाता है। कालेखां चौंककर देखता है तो एक ओर बैसाखी के सहारे वासुदेव को खड़ा पाता है। उसके चेहरे की रंगत उड़ जाती है।]

कालेखां : (हकलाकर) ब···बाबूजी···ग्र···ग्राप !

वासुदेव : मैं जानता हूं, तुम्हें अपना धंधा शुरू करने के लिए रुपयों की जरूरत है। पर इस तरह ढूंढने की क्या जरूरत थी ? मुझसे कह दिया होता।

कालेखां : बात दरग्रसल यह है, बाबूजी···

वासुदेव : (बात काटकर) मैं सब जानता हूं। (नोटों का एक बंडल बढ़ाकर) यह लो। ग्राज ही पेंशन के सौ रुपए मैं लेकर ग्राया था, तुम्हें जितनी जरूरत हो, इसमें से ले लो।

कालेखां : मुझे···मुझे···माफ कर दीजिए बाबूजी ! (वासुदेव के चरणों पर गिर पड़ता है।)

वासुदेव : ग्ररे-ग्ररे, यह क्या कह रहे हो तुम ?

कालेखां : मुझे माफ कर दीजिए, बाबूजी, मैंने ग्रापसे झूठ कहा था। मैं चोर हूं ग्रौर चोरी करने के इरादे से ही यहां ग्राया था।

वासुदेव : तुम चोरी क्यों करते हो ?

कालेखां : मुझे समाज ने मजबूर कर दिया है, बाबूजी !

वासुदेव : यह गलत है। तुममें कठिनाइयों से जूझने की हिम्मत नहीं है। याद रखो, कठिनाइयों के बीच पलकर ही

इन्सान की जिन्दगी निखरती है। गुलाव कांटों के वीच ही खिलता है। मजवूरी का रोना सिर्फ कायर रोता है। समाज लाख खराव हो, तुम्हें उससे क्या। अगर समाज कीचड़ है तो तुम्हें उस कीचड़ की सतह से ऊपर कमल वनकर खिलना होगा।

कालेखां : आप ठीक कहते हैं, वावूजी ! आपने मेरी आंखें खोल दीं। जिन्दगी का यह रास्ता गलत है...

वासुदेव : लो, इनमें से कुछ रुपए ले लो और मन लगाकर कोई सही धंधा करो।

कालेखां : अब इन रुपयों की जरूरत नहीं वावूजी, मैं एक नेक इन्सान वनूंगा।

वासुदेव : याद रखो, समाज तुम्हारी राहों में कितने ही कांटें क्यों न विछाए, तुम्हें समाज में रहकर फूल की तरह खिलना होगा।

जो तोको कांटा वुवै, ताहि वोय तू फूल।

कालेखां : (वासुदेव के पैर छूकर) मुझे आशीर्वाद दीजिए, वावूजी कि मैं एक नेक इन्सान वन सकूं।

वासुदेव : आशीर्वाद है, वेटे ! मेरी वात हमेशा याद रखना।

कालेखां : याद रखूंगा, वावूजी! अच्छा अव चलता हूं, वावूजी!

वासुदेव : अभी कहां जाओगे ? वाहर तो अंधेरा होगा।

कालेखां : जो उजाला मेरे मन में फैल चुका है, उसके साम[ने] वाहर का यह क्षणिक अंधेरा कुछ भी नहीं है...

[कालेखां एक ओर जाता है। और वासुदेव उसे ना[...] हुआ देखता है।]

[परदा गिरता है।]

लहू का रंग एक है

पात्र

⊙

लाला दीनानाथ	मिल मालिक तथा स्कूल ट्रस्ट के चेयरमैन
पांडेजी	स्कूल के प्रिंसिपल
चंदर	लाला दीनानाथ का पुत्र
अशोक	एक गरीब छात्र
ओमप्रकाश	एक भला आदमी
डाक्टर वर्मा	लाला दीनानाथ का पड़ोसी

इन पात्रों के अलावा दो अन्य व्यक्ति

स्थान

⊙

एक बड़े नगर में स्थित
लाला दीनानाथ के बंगले की बैठक

काल

O

मार्च, सन् १९७२

[एक सजी-सजाई बैठक, जिसमें सोफा-सेट, रेडियो, टेलीफोन आदि सब कुछ हैं।

कीमती सूट और टाप-टों के जते पहने लाला दीनानाथ बेचैनी से इधर-उधर टहलते नजर आ रहे हैं। सोफे के पीछे की ओर हाथ-बांधे, सिर झुकाए स्कूल के प्रिंसीपल पांडेजी दयनीय मुद्रा में खड़े हैं। उनके बदन पर खद्दर की धोती व कुर्त्ता है। दोनों की अवस्था ४० से ५० के बीच है।]

दीनानाथ : (चलते-चलते रुककर) यह पहली बार है। स्कूल के इतिहास में पहली बार! आज इस स्कूल को खुले बीस साल हो गए, पर कभी कोई ऐसी वारदात नहीं हुई।

पांडेजी : जी!

दीनानाथ : एक समय था जब किसी मास्टर के सामने पड़ जाने पर स्टूडेंट सिर तक नहीं उठाते थे।

पांडेजी : जी!

दीनानाथ : और आज जमाना यह आ गया है कि स्कूल के लड़के मास्टरों के खिलाफ़ हड़ताल कर रहे हैं, आन्दोलन कर रहे हैं!

पांडेजी : जी!

दीनानाथ : (चिढ़कर) जी! जी! जी! जी के अलावा क तुम्हारे पास कुछ और कहने को नहीं है?

शिक्षक भरती किए जाएं ! साथ ही स्कूल की लाइब्रेरी की सुविधा स्टूडेंट्स को भी मिले !

दीनानाथ : और ?

पांडेजी : और भी कुछ मांगें हैं, पर वे उतनी खास नहीं, जितनी ये दोनों हैं।

दीनानाथ : पर लाइब्रेरी तो पिछले पांच सालों से स्टूडेंट्स के लिए बन्द की जा चुकी है ! और आज तक किसी ने इसके खिलाफ़ आवाज नहीं उठाई !

पांडेजी : यह बात और है कि आवाज न उठाई गई हो, पर स्कूल की लाइब्रेरी स्टूडेंट्स की ही होती है, सर ! हमें ग्रांट भी गवर्नमेंट से इसी शर्त पर मिलती है कि…

दीनानाथ : मैं बेहूदा तर्क सुनना पसंद नहीं करता, पांडेजी ! हां, तो वह लड़का…क्या नाम बताया तुमने ?

पांडेजी : जी, अशोक !

दीनानाथ : हां, वही इन मांगों को लेकर स्कूल के लड़कों को भड़का रहा है न ! हूं…किस क्लास में पढ़ता है ?

पांडेजी : दसवीं में, सर !

दीनानाथ : दसवीं यानी मैट्रिक ! पढ़ाई-लिखाई में कैसा है ?

पांडेजी : स्कूल की नाक है, सर ! ऐसा कोई दूसरा छात्र आज तक स्कूल में कभी नहीं आया।

दीनानाथ : उसे एक बार मुझसे मिलाना।

पांडेजी : वह भी आपसे मिलना चाहता है, सर ! इसीलिए मेरे साथ ही आया है। बाहर खड़ा है।

दीनानाथ : उसे अन्दर बुला लाओ !

पांडेजी : जी सर !

[पांडेजी बाहर जाते हैं और पल भर बाद अशोक को

साथ लेकर लौटते हैं। अशोक—गौर वर्ण का सुन्दर १५-१६ वर्ष का किशोर। बदन पर खाकी पेंट व सफेद कमीज है। अन्दर प्रवेश करने के साथ ही वह दीनानाथजी को हाथ जोड़कर नमस्कार करता है। दीनानाथजी कोई जवाब नहीं देते।]

दीनानाथ : तुम्हारा ही नाम अशोक है ?

अशोक : जी, सर !

दीनानाथ : तुम्हें, स्कूल की लाइब्रेरी से पुस्तकें चाहिएं न ?

अशोक : मुझे ही नहीं चाहिएं, सर, सभी लड़कों को चाहिएं।

दीनानाथ : सबसे तुम्हें क्या मतलब, तुम सिर्फ अपनी बात करो।

अशोक : मुझे सिर्फ अपने लिए कुछ नही चाहिए, सर !

दीनानाथ : और तुम्हारी मांग है कि स्कूल में शिक्षक नही हैं ?

अशोक : मेरी नहीं, हमारी सर ! और हमारी यह शिकायत नहीं है कि स्कूल मे शिक्षक नही हैं, बल्कि यह है कि स्कूल मे शिक्षक पूरे नही है। इससे हमारी पढ़ाई का नुक्सान होता है।

दीनानाथ : तुम अगर चाहो तो मैं तुम्हारे लिए अलग से किसी ट्यूशन का इन्तजाम कर दू।

अशोक : मुझे उसकी भी जरूरत नही, सर !

दीनानाथ : जानते हो, इस स्कूल मे आज तक इस तरह की हड़ताल कभी नही हुई ?

अशोक : हो सकता है, सर ! पर क्या अपने अधिकार के लिए आवाज उठाने का हमें कोई हक नही ?

दीनानाथ : लेकिन तुम्हारे पहले जो स्टूडेंट्स थे, क्या उनके

मुंह में जवान नहीं थी ?

अशोक : शायद रही हो, पर जागृति नहीं रही होगी। आप ही वताइए, सर, आप इस स्कूल के ट्रस्ट के चेयरमैन हैं। आपको हम अपनी तकलीफ नहीं वताएंगे तो और किसे वताएंगे ?

दीनानाथ : लेकिन अपनी तकलीफ वताने का यह भी कोई ढंग है—हड़ताल और आन्दोलन···

अशोक : क्योंकि दूसरे किसी ढंग से कोई हमारी वात ही नहीं सुनना चाहता···

दीनानाथ : जिसे तुम जागृति कहते हो, वह तुम्हारी अनुशासनहीनता है। इस आधार पर मैं तुम्हें स्कूल से निकाल सकता हूं।

अशोक : आप जो चाहें कर सकते हैं। मैं न्याय की राह पर हूं, चेयरमैन साहव! इसमें जो भी वाधाएं आएंगी, मैं हंसते-हंसते झेल लूंगा।

दीनानाथ : ठीक है, तुम जा सकते हो।

[अशोक अभिवादन करके वाहर निकल जाता है।]

दीनानाथ : पांडेजी, इसके पिता क्या करते हैं ?

पांडेजी : आपको नहीं मालूम सर ? आपकी ही मिल में तो काम करते हैं!

दीनानाथ : (चौंककर) मेरी मिल में! क्या नाम है ?

पांडेजी : हरनारायण उपाध्याय।

दीनानाथ : अरे, वह वूढ़ा जो कताई विभाग में मजदूरों का सरदार है ? उसकी नौकरी तो पिछले साल ही खत्म हो गई थी। अपने परिवार की आजीविका का प्रश्न उठाकर वह मेरे सामने काफी गिड़गिड़ाया था, तव तरस खाकर मैंने ही उसे काम

पर बहाल रहने दिया था। और उसका बेटा आज मेरी ही जड़ खोदने पर तुला है!

पांडेजी : आपका सोचना गलत है, वह…

दीनानाथ : चुप रहो! तुम भी जा सकते हो!

[पांडेजी चुपचाप सिर झुकाए बाहर निकल जाते हैं।]

दीनानाथ : (स्वतः) इन्सान के पेट में जब तक दाना पड़ता रहता है, उसे खुराफात सूझती रहती है। आज मैं इसकी जड़ ही काट दूंगा। इस नादान छोकरे की सारी अकड़ भुला दूंगा।

[दीनानाथजी टेलीफोन का रिसीवर उठाकर नम्बर डायल करते हैं, फिर माउथपीस पर बोलते हैं…]

दीनानाथ : हलो…कौन? मैनेजर…मिस्टर खरे…देखिए मिस्टर खरे, कताई विभाग में वह जो बूढ़ा है न, हरनारायण…उसे आज ही काम से जवाब दे दीजिए…फौरन…कारण? कारण यह बता दीजिए कि आप बहुत बूढ़े हो चुके हैं, आपसे हमारा काम नहीं चल सकता… ठीक है…

[रिसीवर रखकर मंच के सामने की ओर आते हैं। उनके होंठों पर कुटिल मुस्कान है। दृश्य परिवर्तन के लिए मंच का प्रकाश धीरे-धीरे गुल हो जाता है। दुबारा जब वहां प्रकाश होता है तो दिखाई देता है, लाला दीनानाथ उसी तरह टहल रहे हैं। कुछ देर बाद चंदर प्रवेश करता है—१५-१६ वर्ष का किशोर, अत्याधुनिक फैशन वाला। बदन पर डार्क रंग की पेंट, हिप्पीकट कुर्त्ता, लंबे बाल व आंखों पर चश्मा है।]

चंदर : आपने मुझे बुलाया, डैडी?

दीनानाथ : हां। तुम्हारी कक्षा में कोई अशोक नाम का

लड़का पढ़ता है ?

चंदर : हाँ, पढ़ता तो है।

दीनानाथ : कैसा लड़का है ?

चंदर : एकदम वाहियात ! जब देखो तब किताबों में ही खोया रहता है। ऐसी लाइफ का भी कोई मानी है डैडी ?

दीनानाथ : सुना है, वह क्लास में हमेशा फर्स्ट आता है ?

चंदर : इतना पढ़ने के बाद अगर फर्स्ट आ ही गया तो कौन-सा कमाल कर दिया !

दीनानाथ : और तुम किस नम्बर पर आते हो ?

चंदर : (घबराकर) म...म...मैं। मेरे नम्बर का क्या है, डैडी ! बस, यूं समझिए कि पास हो जाता हूं।

दीनानाथ : वह भी इसलिए कि तुम मेरे लड़के हो—स्कूल ट्रस्ट के चेयरमैन के ?

[चंदर दांत निकालकर कुत्तों की तरह हंसता है। इसी समय ओमप्रकाश नाम का एक अधेड़ व्यक्ति तेजी से अन्दर आता है।]

ओमप्रकाश : थोड़ी दया कीजिए लालाजी, आपसे एक मदद मांगने आया हूं।

दीनानाथ : बोलो।

ओमप्रकाश : आपके बंगले से थोड़ी ही दूर पर एक इन्सान का ऐक्सीडेंट हो गया है। उसके बदन से लगातार खून बह रहा है। अगर उसे फौरन अस्पताल पहुंचाया गया तो वह मर जाएगा। अगर आ अपनी कार...

दीनानाथ : कोई बड़ा आदमी है क्या ?

ओमप्रकाश : आदमी तो मामूली-सा ही है, लालाजी ! उस

जेब में पड़े कार्ड से मालूम हुआ कि किसी मिल का मजदूर है। नाम है—हरनारायण।

दीनानाथ : ओह!

ओमप्रकाश : आदमी बड़ा हो या छोटा, जान तो सबकी एक होती है। अगर अपनी कार कुछ देर के लिए दे देते तो उसे फौरन अस्पताल…

दीनानाथ : किसी टैक्सी में क्यों नहीं ले जाते?

ओमप्रकाश : यह जगह कुछ इस तरह के वीरान में पड़ जाती है कि यहां टैक्सी भी तो आसानी से नहीं मिलती। आपकी कार मिल जाने से…

दीनानाथ : कार देने में मुझे कोई ऐतराज नहीं था, पर अफसोस, कार की चाबी मेरे ड्राइवर के पास रहती है और वह इस समय बाहर गया हुआ है।

ओमप्रकाश : ओह, तब मैं दूसरी जगह इन्तजाम करता हूं।

[ओमप्रकाश तेजी से बाहर निकल जाता है।]

दीनानाथ : (मुंह बनाकर) जल्दी कार न मिली तो मर जाएगा। मर जाने दो, हुंह! मैंने उसे बचाने का ठेका ले रखा है क्या!

चंदर : हां, ठीक तो है डैडी! और हमारी कार में अगर खून के धब्बे लग जाते तो कौन साफ कराता?

दीनानाथ : तू चुप रह बे, गधे की औलाद!

चंदर : औलाद तो मैं आपकी हूं डैडी!

दीनानाथ : अब तू दफा भी होता है कि नहीं यहां से?

चंदर : वाह, अभी थोड़ी देर पहले तो आपने ही मुझे बुलाया था और अब आप ही मुझे भगा रहे हैं।

दीनानाथ : बुलाया था तो क्या मेरे सिर पर चढ़कर नाचेगा!

बंदर : ठीक है, जाता हूं। अब आप बुलाएंगे, तब भी
नहीं आऊंगा !

[बंदर तेजी से चला जाता है। तभी फोन की घंटी
बजती है। लालाजी आगे बढ़कर रिसीवर उठाते हैं।]

दीनानाथ : (माउथपीस पर) हलो, कौन ··· हरे ··· हां, बोलो
··· क्या ? हरनारायण हिसाब मांग रहा था ?
अच्छा ! तुमने कह दिया कि लालाजी ने नौकरी
से अलग करने की बात की है, हिसाब की नहीं
··· बहुत अच्छे ··· तुम अब काफी काबिल हो गए
हो ··· क्या कहा उसने ? मैं लालाजी से बंगले
पर निपट लूंगा ··· (हंसकर) शायद तुमसे ही मिलने
आ रहा था ··· पर खैर ··· ओ० के० ।

[रिसीवर रख देता है। तभी सिर झुकाए उदास से
पांडेजी प्रवेश करते हैं।]

पांडेजी : खत्म हो गया बेचारा !

दीनानाथ : कौन खत्म हो गया पांडेजी ?

पांडेजी : वही हरनारायण। शायद उसे कोई जबरद
मानसिक आघात लगा था। खोया-खोया
रास्ते पर चला आ रहा था। पीछे से ट्र
हार्न शायद उसे सुनाई ही नहीं दिया और
सड़क पर कुचला गया। मैं भी वहीं था।

दीनानाथ : तो क्या वह मर गया ?

पांडेजी : हां। अगर तुरन्त अस्पताल पहुंचाने क
कोई साधन मिल जाता तो शायद···

दीनानाथ : शायद बच जाता, है न ! मुझे तो ऐसा
है, पांडेजी कि आजकल का इन्सान इसी
पर ही जिन्दा है।

पांडेजी : शायद !

दीनानाथ : फिर शायद !

[दीनानाथजी ठहाका मारकर हंसते हैं। दृश्य परिवर्तन के लिए मंच पर का प्रकाश गुल हो जाता है। दोबारा जब प्रकाश होता है तो दीनानाथ उसी बैठक में बेचैनी से टहल रहे हैं। बीच-बीच में रुककर वह कलाई घड़ी में वक्त देख लेते हैं।]

दीनानाथ : (रुककर, बड़बड़ाते हुए) रात के ग्यारह बज गए और अभी तक नहीं आया···मेरे मना करने पर भी कार ले गया है।

[इसी समय बाहर दरवाजे पर दस्तक होती है।]

दीनानाथ : लो, आ गया शायद !

[एक ओर को झपटता है और क्षण भर बाद अशोक के साथ लौटता है।]

दीनानाथ : तुम ! इस समय ! यहां ?

अशोक : मैं आना नहीं चाहता था लालाजी, मजबूरी···

दीनानाथ : कैसी मजबूरी ?

अशोक : आप तो जानते हैं कि आपने कल मेरे पिताजी को नौकरी से जवाब दे दिया था। इससे उनके मन को जो धक्का लगा उसी की वजह से···

दीनानाथ : फिजूल की बातें सुनने के लिए मेरे पास वक्त नहीं है। सीधे कहो, क्यों आए हो ?

अशोक : कुछ रुपयों के लिए आया हूं।

दीनानाथ : रुपये। क्या मैं खैरात बांटता फिरता हूं ?

अशोक : मैं खैरात लेने नहीं, अपने पिता का हिसाब लेने आया हूं। वह भी लेने न आता अगर इस समय मां की तबियत अचानक न बिगड़ जाती। इलाज

के लिए कुछ रुपए तो…

दीनानाथ : और वह तुम मुझसे मांगने चले आए। तुम्हें मालूम है, तुम्हारे पिताजी अपना सारा हिसाब उठा चुके हैं?

अशोक : ऐसा नहीं हो सकता।

दीनानाथ : हो नहीं सकता, पर हो तो गया होगा!

[इसी समय डाक्टर वर्मा प्रवेश करते हैं।]

डाक्टर वर्मा : (पीछे देखते हुए) हां, ऐसे ही ले आओ। यहां सोफे पर लिटा दो।

[दो व्यक्ति दोनों ओर हाथ पैर पकड़े खून से लथपथ अचेत बंदर को लेकर आते हैं और सोफे पर लिटा देते हैं, फिर वे दोनों चले जाते हैं।]

दीनानाथ : यह…क्या हुआ डाक्टर?

डाक्टर वर्मा : बताता हूं। पर इसके लिए फौरन खून का इन्तज़ाम कीजिए। खून बहुत ज्यादा बह गया है और अगर इसे फौरन खून न दिया गया तो…

दीनानाथ : तो ब्लड-बैंक से…

डाक्टर वर्मा : लेकिन ब्लड-बैंक तो यहां से सात मील दूर है। आने-जाने में काफी वक्त लग जाएगा।

दीनानाथ : हे भगवान, फिर इस समय…

डाक्टर वर्मा : आप खुद अपना खून क्यों नहीं दे देते?

दीनानाथ : हां-हां, मैं तैयार हूं। (हाथ बढ़ा देते हैं।)

डाक्टर वर्मा : (बैग से सामान निकालते हुए) ठहरिए, पहले मुझे आपका खून टेस्ट करना पड़ेगा। दोनों के खून के अनुरूप तत्त्व, जिसे ग्रुपिंग कहते हैं, आपस में मिलने चाहिएं।

[एक सुई डाक्टर वर्मा दीनानाथ की उंगली में चोंचते

है और उसमें निकली खून की बूंद को कांच की पट्टी पर लेकर खुर्दबीन से देखता है।]

डाक्टर वर्मा : (सिर उठाकर) ऊंहूं, नहीं दिया जा सकता। आपके खून को ग्रुपिंग ए है जबकि इसे ग्रुपिंग बी का खून चाहिए।

दीनानाथ : (व्याकुल-सा) हे भगवान, आधी रात को मैं किसके दरवाजे पर जाकर खून की भीख मांगूं।

अशोक : (हाथ बढ़ाकर) मेरा खून टैस्ट कीजिए डाक्टर!

दीनानाथ : अशोक'''तुम'''मेरा मतलब है'''

अशोक : चंदर आपका बेटा होने से पहले एक इन्सान है, लालाजी!

दीनानाथ : लेकिन'''

डाक्टर वर्मा : इसमें लेकिन-वेकिन क्यों!

अशोक : क्यों नहीं डाक्टर साहब? मैं एक गरीब मिल मजदूर का बेटा जो ठहरा। यह क्यों चाहेंगे कि मेरा खून एक रईस बेटे की रगों में जाए।

डाक्टर वर्मा : आज के जमाने में भी आप ऐसी बात सोचते हैं क्या दीनानाथजी? फिर आप मुझे यह बताइए कि ब्लड-बैंक में जो खून बोतलों में भरा हुआ है उसे क्या आप पहचान पाएंगे कि वह किसी ब्राह्मण का है या हरिजन का, किसी गरीब का है या अमीर का?

दीनानाथ : नहीं, नहीं'''यह बात नहीं (सिर झुका लेते हैं)।

डाक्टर वर्मा : याद रखिए दीनानाथजी, कोई ऊंच हो या नीच, अमीर हो या गरीब, लहू का रंग एक ही होता है।
[डाक्टर वर्मा अशोक के हाथ की उंगली में एक सुई चुभोकर खून निकालते हैं और टैस्ट करते हैं।]

डाक्टर वर्मा : हां, यह खून दिया जा सकता है। ग्रुपिंग, 'बी' ही है।

दीनानाथ : लेकिन, बेटा अशोक तुम···तुम्हारी मां···

अशोक : उनकी आप फिक्र न कीजिए, लालाजी, जो सामने है, उसे देखिए।

दीनानाथ : पर यह दुर्घटना हुई कैसे डाक्टर ?

डाक्टर वर्मा : माफ कीजिए, लालाजी ! आपके सुपुत्र को शायद अफीम सेवन करने की आदत है। उसी झोंक में कार को काबू में न कर सकने के कारण एक खड्ड में जा गिरा। कार गिरने की आवाज सुनकर मैं बंगले से बाहर निकला। टार्च के प्रकाश में आपके सुपुत्र को खड्ड में पड़ा देखा। अपने दो नौकरों को बुलाकर मैं इसे यहां ले आया। गनीमत यह है कि मैं अशोक को पहचानता था, नहीं तो जाने क्या हो जाता···

अशोक : अब देर मत कीजिए, डाक्टर !

डाक्टर वर्मा : हां, तुम आकर इस कुर्सी पर बैठ जाओ। औ अपने पैर लम्बे कर दो।

[अशोक कुर्सी पर बैठकर पैर फैला देता है।]

दीनानाथ : आपने सही कहा डाक्टर, लहू का रंग एक

[भाव-विह्वल से दीनानाथजी मंच के एकदम के हिस्से की ओर आते हैं। परदा गिरता है।]